नेहरू बाल पुस्तकालय

छोटे जीवों से जान-पहचान

कालूराम शर्मा

nbt.india
एकः सूते सकलम्
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
NATIONAL BOOK TRUST, INDIA

ISBN 978-81-237-6984-4

पहला संस्करण : 2013 (*शक* 1935)

Chhote Jivon Se Jan-Pehchan *(Hindi Original)*

₹ 95.00

निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110 070 द्वारा प्रकाशित
Website: www.nbtindia.gov.in

विषय सूची

किताब के बारे में

रोजमर्रा की ज़िंदगी में अपने आसपास की दुनिया में नन्हें-नन्हें जंतुओं को देखना बड़ा रोमांचकारी होता है। इनमें से अनेक हमारे जाने-पहचाने होते हैं। इन रहस्यमय जंतुओं की चाल-ढाल, खान-पान, शिकार करने के तरीके, बच्चे पैदा करना, बच्चों की परवरिश आदि हमारी नाक के नीचे हरदम होते रहते हैं। बेशक, ये हमारे जाने-पहचाने जीव हैं और हमारी ज़िंदगी पर गहरा असर डालते हैं, इसके बावजूद उनकी जटिल अदाओं को हम जान-समझ नहीं पाते। न जानने की एक वजह है कि हम उन्हें सरसरी तौर पर देखकर आगे बढ़ जाते हैं। अगर हम इन्हीं जीवों के क्रियाकलाप थोड़ा ध्यान से देखें तो परत-दर-परत इनके रहस्यों का पिटारा खुलता जाता है।

जंतुओं के बारे में हम ढेरों जानकारियाँ पुस्तकों, अखबारों, पत्रिकाओं और टीवी के माध्यम से हासिल करते रहते हैं। ख़ासकर बच्चों की बात करें तो उनकी सृजनात्मकता, जिज्ञासा व कल्पनाशीलता को ढेरों नीरस और उबाऊ जानकारियों के बोझ तले दबा देते हैं। उन्हें खुले तौर पर अवलोकन करने, विवेचना व व्याख्या करने के मौके कम ही मिलते हैं। मगर उन जानकारियों को अपनी कसौटी पर परखने की भी ज़रूरत है। हम अपने आसपास पाए जाने वाले जंतुओं की लंबी फेहरिस्त बना सकते हैं, जिनका अवलोकन हमें वैज्ञानिक कसौटी के आधार पर विवेचना करने का मौका दे सकते हैं।

जंतु-जगत इतनी रोचकता और विचित्रता लिए हुए है कि उसके बारे में जानने और समझने का हर किसी को मन करता है। कुछ जंतु जो भले ही हम देख पाते हों पर उनके व्यवहार को जल्दी जानना हमारे लिए संभव नहीं हो पाता, क्योंकि या तो वे

चकमा देकर कहीं छिप जाते हैं या फिर एकदम सुस्त पड़े रहते हैं। यही वजह है कि अनेक जंतुओं का अवलोकन करने के लिए काफी धैर्य रखना पड़ता है। मान लीजिए कि आप एक ऐसे पक्षी का अवलोकन कर रहे हैं जो पेड़ की झुरमुट में रहता है। ऐसे में आपके धैर्य की परीक्षा होती है कि आप वहाँ डटे रहें और उसके क्रियाकलाप का अवलोकन करें।

बच्चों के साथ, चाहे वे ग्रामीण परिवेश के हों या शहरी, अगर उन्हें अपने आसपास निहारने का अवसर मिले तो वे काफी कुछ सीख सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे ही कुछ जंतुओं को आधार बनाया गया है जो कहीं उड़ते, रेंगते, सुस्ताते, खाते, शिकार करते, अपने अंडों-बच्चों की निगरानी करते या अपनी सुरक्षा करते जैसे क्रियाकलाप में व्यस्त देखे जा सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का ढाँचा कुछ इस प्रकार रखा गया है कि बच्चे अपने आसपास के जीव-जंतुओं के क्रियाकलाप का अवलोकन करने हेतु प्रेरित हो सकें।

ज़मीं पर उतरा इंद्रधनुष

किसी ने धरती और मानव के रिश्ते को लेकर चार बातें कही हैं जो आज भी उतनी ही सही प्रतीत होती हैं :

पहली बात : ''इस धरती पर मानव का मालिकाना नहीं है, बल्कि धरती का मानव पर है।''

दूसरी बात : ''धरती हमारी माता है। धरती पर जो कुछ भी घटित होता है उसे धरती की संतानों को भोगना ही पड़ता है।''

तीसरी बात : ''इस धरती के जीवन-जाल को मानव ने नहीं बनाया। वह तो महज इस जाल का एक धागा भर है। यदि वह इस धागे के साथ कुछ भी छेड़खानी करता है तो इसका अर्थ है कि वह अपने लिए ही अनर्थ कर रहा है।''

चौथी बात : ''इस धरती पर सभी चीज़ें एक-दूसरे से गहराई से जुड़ी हुई हैं।''

अपने कदमों तले अगर हम नज़र डालें तो वहाँ अनेक छोटे-छोटे जीवों का आधिपत्य है। यह नन्हीं दुनिया किसी इंद्रधनुष से कम तो नहीं! यह रंग-बिरंगी दुनिया



हर मायने में लाज़वाब है। ज़मीं पर बिखरी जंतुओं की इंद्रधनुषी छटा का अवलोकन करना और उसकी व्याख्या करना एक दिलचस्प प्रक्रिया है। छोटे जीवों से जान-पहचान की इस प्रक्रिया में, उनके बारे में कई रहस्यों का पता चलता है। साथ ही प्रकृति और हमारे बीच के रिश्ते को समझने में भी मदद मिलती है।

आइए, इस निराली दुनिया के जीवों की कुछ ऐसी हरकतों को समझने की कोशिश करें, जो हमारी आँखों के सामने घटित होती रहती हैं।

रात के धुप्प अंधेरे में आपने जुगनुओं को चमकते देखा होगा। चींटियों की लंबी-लंबी कतारें देखी होंगी। रंग-बिरंगी तितलियों को फूलों पर मँडराते हुए देखा होगा। आप जैसे ही बाथरूम में घुसते हैं, आपको कोने में दुबकी हुई मकड़ी और फर्श पर तेज़ी से रेंगता हुआ जीव देखने को मिलता है। यदि आप बरसात के सुहाने दिनों में अपने आसपास नज़र दौड़ाएँ तो तितलियों और पतिंगों की रंग-बिरंगी दुनिया देखने को मिलेगी। ज़ाहिर है कि यह दुनिया कई तरह के जीव-जंतुओं का ठिकाना है। घर से लगाकर बाग-बगीचों, खेत-खलिहानों, पेड़ों की पत्तियों, फूलों, मिट्टी के अंदर—हर जगह नन्हे-नन्हे जीवों की निराली दुनिया बसी है।

मक्खी, मच्छर, तितली, खटमल, जुआं, चींटी, टिड्डा, गुबरैला, ततैया आदि कीट-श्रेणी में आते हैं। अपनी रोजमर्रा की ज़िंदगी में इनसे हमारा वास्ता पड़ता रहता है। कभी किसी जंतु को देखकर हम प्रसन्न हो जाते हैं, वहीं कितनों की वजह से हम परेशान हो जाते हैं।

आमतौर पर सभी कीटों में तीन जोड़ी टाँगें मिलेंगी। पूरा शरीर तीन मुख्य भागों में बँटा रहता है-सिर, वक्ष और पेट का हिस्सा। सिर वाले हिस्से में आगे की ओर दो बालनुमा रचनाएँ होती हैं जिन्हें एंटीना कहते हैं। एंटीना के माध्यम से ही कीट अनेक सूचनाएँ प्राप्त करते हैं। आमतौर पर पंख भी होते हैं, पर सभी कीटों में नहीं।

कुछ कीटों के शरीर पर एक कड़ा आवरण होता है। इसके भीतर उनके कोमल अंग सुरक्षित रहते हैं। दरअसल इन कीटों के शरीर की बनावट, रहन-सहन, खान-पान कुछ इस तरह का है कि ये कहीं भी अपने आपको जीवित रख पाते हैं। संसार में ऐसी

कोई जगह नहीं जहाँ इनका वास न हो। संसार में ऐसी कोई चीज़ नहीं जहाँ इनका वास न हो। संसार में ऐसी कोई चीज़ नहीं जो कीट श्रेणी के जंतुओं का भोजन न हो। हम सेल्युलोज को नहीं पचा सकते। लेकिन दीमक कपड़े काग़ज़, लकड़ी आदि को जो सेल्युलोज युक्त होते हैं, आराम से चट कर जाती है। मधुमक्खी, दीमक तथा चींटी आदि का सामाजिक जीवन जीने का निराला ही तरीका है। उनकी व्यवस्थाएँ हमें यह सोचने पर मज़बूर कर देती है कि केवल विकसित मस्तिष्क ही सब कुछ नहीं है।

अगर हम बाल्टी भर पानी में एक चम्मच शक्कर घोल दें, तो तितली को पता चल जाता है कि इसमें शक्कर घुली है। जीभ, कान, नाक न होने पर भी इन्हें स्वाद, सुगंध व आवाज़ का भान हो जाता है। एंटीना कीट को स्पर्श, आवाज़, स्वाद, तापक्रम आदि की सूचनाएँ देता है। मज़े की बात यह है कि कीट साँस तो लेते हैं, पर उनके फेफड़े नहीं होते।

कीट अपने आप में निराले तो हैं ही, ये आम आदमी के जीवन को भी प्रभावित करते हैं। जहाँ एक तरफ इनसे शहद, लाख, रेशम आदि मिलता है, वहीं दूसरी तरफ अनेक कीट पेड़-पौधों के फूलों के परागन में मदद करते हैं।



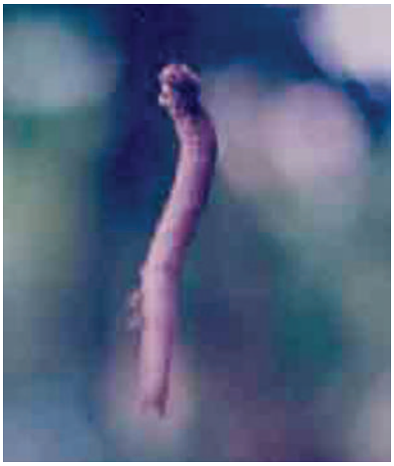
गुबरैला (बीटल) कीट का एक ऐसा समूह है, जिसकी दस लाख से भी अधिक जातियाँ संसार भर में फैली है। सबसे बड़ा गुबरैला लंबाई में 15 से 20 से.मी. तक का होता है। लेकिन सबसे छोटा, इतना छोटा कि हम नग्न आँखों से देख भी नहीं सकते। कुछ इतने चमकदार कि मानो उन पर किसी धातु की ढाल चढ़ा दी गई हो। कुछ इतने रंग-बिरंगे कि मानो इंद्रधनुष के रंग भी फीके लगें। हमारे देश में इन कीटों की कुछ किस्में गोबर में पाई जाती हैं, शायद इसीलिए इन्हें गुबरैला कहा जाता है।

तितलियों और पतिंगों, दोनों के ही पंख होते हैं। इन दोनों में फर्क यह है कि जब तितली बैठती है तो इसके पंख खड़े रहते हैं, लेकिन जब पतिंगा बैठता है तो पंख ज़मीन पर फैल जाते हैं। आमतौर पर तितली दिन में घूमती रहती है, जबकि पतंगे रात में निकलते हैं। तितलियों की सूंड, जिससे ये फूलों का रस चूसती हैं, यह पतिंगों की अपेक्षा छोटी होती है। यह बाकी समय गोलाई में लिपटी रहती है पर देखने में घड़ी की कमानी-सी लगती है। वहीं पतिंगों की सूंड काफी लंबी होती है और नलीदार फूलों को परागित करने में अहम भूमिका निभाती है।



सबसे दिलचस्प होता है तितलियों और पतिंगों की लार्वा अवस्था का अध्ययन करना। ख़ासकर बरसात के दिनों में ये पेड़-पौधों के गहने बन जाते हैं। अगर आप थोड़ा भी ध्यान दें तो इनकी अठखेलियाँ देखने को मिलेंगी। कुछ ऐसे कि आपको दिखाई भी नहीं देंगे और कुछ रंग-बिरंगे कि अलग ही छटा बिखेरते हैं। तितलियों, पतिंगों की एक ख़ूबी यह होती है कि इनमें कायांतरण होता है अर्थात् अंडों में से निकलने वाले बच्चे अपने माता-पिता से एकदम भिन्न होते हैं। कीटों के लार्वा में ही रेशम बनाने की क्षमता होती है वयस्कों में नहीं। लार्वा जब प्यूपा में बदल रहे होते हैं तब ये अपने को रेशम के खोल से ढँककर सुरक्षित हो जाते हैं। प्यूपा अवस्था में जीव अंदर रहते हुए कई प्रकार के परिवर्तनों से गुजरता है। फिर इस खोल को तोड़कर उसमें से वयस्क जीव बाहर निकलता है। कुछ केटरपिलर में मुझे प्यूपा बनने की बहुत ही दिलचस्प प्रक्रिया देखने को मिली। लार्वा जब प्यूपा में बदलने की स्थिति में होता है, तब वह पेड़ की शाखा से रेशम का एक सिरा अटका देता है। और उसके दूसरे छोर से केटरपिलर लटका होता है। अब यह केटरपिलर अपने शरीर से रेशम बनाता है









और उसको अपने शरीर पर लपेटता जाता है। इस दौरान केटरपिलर गोल-गोल घूमता है और रेशम भी छोड़ता है। रेशम का धागा हवा के संपर्क में आने पर सूख जाता है जिसे वह अपने शरीर पर लपेटता है। आपने किसी भी पेड़ पर कड़े खोल चिपके ज़रूर देखे होंगे। ज़रा रुककर ध्यान से देखने की कोशिश कीजिए कि आखिर ये क्या हैं। इन खोलों में कीटों की परवरिश हुई होगी। जी हाँ, वही सिकाड़ा जो बिना रुके आवाज़ करते रहते हैं। सिकाड़ा की ख़ूबी है कि इनमें केवल नर ही आवाज़ निकलती है। ये जो आवाज़ निकालते हैं, वह मुँह से नहीं, बल्कि अपने उदर के नीचे लगे उपकरण से, जिसमें कंपन्न से आवाज़ पैदा होती है। ऊपर बने चित्र जैसे खोल को ध्यान से देखें तो इसमें से जीव निकल चुका है। बाकी बचा रह गया खोल। ख़ासकर आम के पेड़ के तने पर आपको सिकाड़ा के ढेरों खोल चिपके मिलेंगे।

अगर आप कहीं बाज़ार में मिठाई या गुड़ की दुकान पर जाएँगे तो वहाँ आपको एक नन्हा-सा लाल-पीले रंग का पंखदार कीट ज़रूर दिखाई देगा। यह एक प्रकार की ततैया है जो गुड़ के ढेलों पर या मिठाई



पर भिनभिनाती है। इसका भोजन तो शाकाहारी होता है मगर इसका लार्वा मांसाहारी है। ततैया की कहानी और भी दिलचस्प है। ततैया की कुछ किस्में अपनी संतान की परवरिश के लिए मिट्टी से सुंदर-सुंदर घरौंदे बनाती हैं।

मकड़ियों के जालों को देखकर हममें से अधिकांश लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं मगर इनकी जाला बुनने की कला और जाले को थोड़ा रुककर देखें तो उसमें एक निरालापन देखने को मिलता है।

आगे के लेखों में आप पाएँगे इन नन्हें जीवों की निराली दुनिया की एक झलक। आपसे अपेक्षा है कि अपने आसपास पाए जाने वाले जीवों का अवलोकन करें और उनकी दुनिया के रहस्य को समझें।

लगता तो फल जैसा है मगर...

यकीन कीजिए, इस चित्र में जो दिखाया गया है वह फल नहीं है। दरअसल, हम भी ऐसा ही सोच रहे थे कि इस चित्र में पेड़ की टहनी पर लटक रही रचना फल होगी। बारीकी से देखा तो पाया कि यह तो किसी कीट का ककून है। ककून यानी शंखी जिसे अंग्रेज़ी में प्यूपा कहते हैं। कीट समूह के तितली, पतिंगे आदि के जीवन की वह अवस्था, जिसमें इल्ली एक खोल में बंद हो जाती है।



दरअसल, मैं अपने मित्रों के साथ सुबह-सुबह एक पहाड़ी पर सैर करने निकला तो कँटीली झाड़ियों की टहनियों से कुछ फल जैसी रचनाएँ लटकी हुई मिलीं। जब छुआ

तब भी यही लगता रहा कि कोई फल है जिसपर कड़ा छिलका लंबी-सी डंठल की मदद से डाली से जुड़ा हुआ है। फल को हिलाओ तो गट-गट की वैसी ही आवाज़ आई जैसे सूखे नारियल या किसी अन्य फल को हिलाने पर आती है।

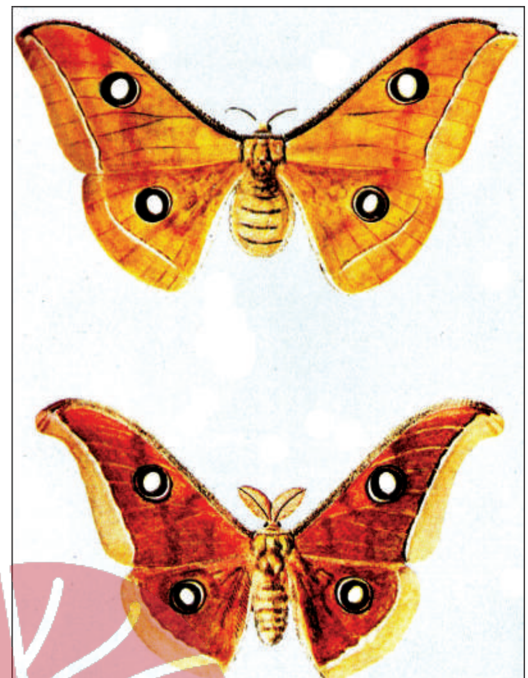
यह तो हम जानते हैं कि तितली, पतिंगों में अंडे से निकलने वाले जीव वयस्कों से काफी अलग होते हैं। इनमें कायांतरण होता है। इन कीटों की वयस्क मादा अंडे देती है और उनमें से जो बच्चे निकलते हैं वे अपने माता-पिता से काफी भिन्न होते हैं। अंडों से निकले जीव के आकार में फर्क तो होता ही है, रहवास और भोजन भी अलग होता है। जैसे कि तितली और पतिंगों की इल्लियों का भोजन हरे पत्ते होते हैं जबकि इनसे बनने वाले वयस्क का भोजन फूलों का रस होता है। इतना ही नहीं ततैया की कहानी तो और भी दिलचस्प है। इनकी कई प्रजातियों में वयस्क शाकाहारी होते हैं जबकि उनके बच्चे मांसाहारी होते हैं। मेंढक में इसका ठीक उल्टा होता है। वयस्क मेंढक मांसाहारी होते हैं जबकि इनके बच्चे यानी टेडपोल शााकाहारी होते हैं।

कुछ देर तक यही चर्चा चलती रही। चर्चा का रुख तब बदला जब उसके डंठल को ध्यान से देखा। तब जाकर कहीं पक्का हुआ कि डंठल, डाली से वैसा ही जुड़ा हुआ नहीं है जैसे कि कोई फल जुड़ा होता है। इस रचना का डंठल तो पूरी टहनी से लिपटा हुआ था। (देखें चित्र में)। जब इस रचना को हाथ लगाकर देखा-परखा तो पक्का हो गया कि यह फल नहीं है। यह रचना तो रेशम के महीन धागों से बुनी गई है। रेशम के महीन धागे इस तरह लिपटे हैं कि यह रचना काफी कड़ी और मज़बूत महसूस होती है।

दरअसल, यह पतिंगे की एक प्रजाति का प्यूपा है जिसका नाम टसर सिल्क मॉथ है। टसर सिल्क मॉथ ज़्यादातर कँटीली झाड़ियों या पेड़ों की पत्तियों और टहनियों पर अंडे देती है। अंडों से जो इल्लियाँ निकलती हैं वे उन्हीं पेड़-पौधों की पत्तियों को

कुतर-कुतरकर खाती और पनपती हैं। एक स्थिति ऐसी आती है कि इल्लियाँ रेशम का खोल ओढ़ लेती हैं और फलनुमा रचना को अंजाम देती हैं। कुछ दिनों बाद इस रेशम के ककून में से एक ख़ूबसूरत पतिंगा बाहर निकलकर उड़ जाता है।





प्यूपा में से निकला टसर सिल्क मॉथ

अन्य पतिंगों की तरह ही टसर सिल्क मॉथ के जीवनचक्र में मादा अंडे देती है। इन अंडों में से इल्ली यानी कैटरपिलर निकलता है। कुछ दिनों के बाद यह कैटरपिलर एक फलनुमा रचना प्यूपा में तब्दील हो जाता है। कुछ समय के बाद इस प्यूपा में से पंख वाला पतिंगा निकलता है।

ऐसे उदाहरण प्रकृति में काफी मिलते हैं। पेड़-पौधों पर अक्सर रंग-बिरंगी इल्लियाँ तो आपने खूब देखी होगी। आमतौर पर बरसात के दिनों में इल्ल्याँ काफी तादाद में दिखाई देती हैं। ये इल्लियाँ तितली या पतिंगे के जीवनचक्र की लार्वा अवस्था है।

आप चाहें तो कीटों के जीवनचक्र का अध्ययन भी कर सकते हैं। यदि कहीं आपको इल्लियाँ मिलें तो उनको गत्ते के डिब्बे में रख दीजिए और जिस पेड़-पौधे पर से उनको पकड़ा है उसकी पत्तियाँ भी डाल दीजिए, ताकि इल्लियों के भोजन का प्रबंध हो सके। इल्लियों को भोजन काफी मात्रा में चाहिए होता है। इल्लियों का एक ही काम होता है कुतर-कुतरकर खूब खाना। इसलिए, इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि डिब्बे में पत्तियाँ रोज डालते रहें।

अब अंडों में से निकलने वाली इल्लियों और उनमें होने वाले बदलावों का अवलोकन करें। इल्ली अपनी चमड़ी उतारती है जिसे मोल्टिंग कहते हैं। कुछ समय के बाद यह चलती-फिरती इल्ली आपको दिखाई नहीं देगी। वह अपने चारों ओर खोल ओढ़कर सुस्ता रही होगी। यही इसकी प्यूपा अवस्था है।

जब यह प्यूपा अवस्था में होती है तब इसे भोजन की ज़रूरत नहीं होती। कुछ दिनों बाद प्यूपा में से एक ख़ूबसूरत पंखदार तितली या पतिंगा बाहर निकलता है।

कुदरत की अद्भुत पहेली – कैटरपिलर

अगस्त का महीना और ज़ोरदार बारिश...! जी हाँ, मैं दक्षिणी गुजरात के धरमपुर की बात कर रहा हूँ। यहाँ काफी ज़ोर की और सतत बरसात होती है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि यहाँ हर साल लगभग 200 सेंटीमीटर बरसात होती है। इसीलिए इसे दक्षिण गुजरात का चेरापूंजी कहा जाता है। ज़ाहिर है कि बरसात ज्यादा होती है तो वनस्पति भी खूब होनी चाहिए। हर तरफ पेड़ और ज़मीन पर हरियाली की चादर...! हाँ, अब तो सीमेंट-कांक्रीट ने इन कुदरती जंगलों को उजाड़ना शुरू कर दिया है।

अभी-अभी बरसात थमी है, मगर आम के पेड़ों की झुरमुट से पानी की बड़ी-बड़ी बूँदों के गिरने का सिलसिला थमा नहीं है। जब ज़मीन पर निगाह डाली तो पाया कि कुछ मखमली-हरे रंग के जीव रेंग रहे हैं। मैं क्या देखता हूँ कि इन कीड़ों को एक महिला झाड़ू से इकट्ठा कर रही है। मैंने पास जाकर देखा तो पाया कि लगभग दो-तीन इंच के जीव जिनकी पीठ पर कत्थई रंग के चकत्ते और बगल में रोएँदार



रचनाएँ हैं। मैंने जीव को हाथ में लेना चाहा तो उस महिला ने गुजराती में कहा—“भाई, तमे आ कीड़ा ने हाथ न लगाड़ो। आ जीव थी तमने खंजवाल उपड़शे। एटले हूँ आ जीवों ने झाडू थी दूर करी रही छूं।”

बहरहाल, महिला ने मुझे चेतावनी दे दी। मगर मैं उस सुंदर से जीव को

देखना चाहता था। महिला ने अपनी झाड़ू से कीड़ों की एक ढेरी बना दी। उनमें से कई जीव तो इंसानों और चौपायों के पैरों तले दबकर दम तोड़ चुके थे। मैं इन जीवों को देखने के लिए ज़मीन पर बैठा हूँ। तभी एक बच्ची जिसका नाम क्रिशा है, वह भी उन जीवों को देखने में शामिल हो गई। क्रिशा कहती है कि इसका नाम 'भादवड़ा' है। हालाँकि उसको यह पता नहीं कि आखिर इनको भादवड़ा क्यों कहते हैं। मगर उस महिला ने बताया कि ये भादों महीने में ही दिखते हैं इसलिए इनको भादवड़ा कहते हैं। नामकरण का यह दिलचस्प तरीका मुझे अचरज में डाल देता है। झाड़ू लगाने वाली महिला ने बताया कि इसको 'पान चुंचड़ा' भी कहते हैं। पान चूंचड़ा का अर्थ—जो पत्तों को चूस जाता है। वैसे भी ये जीव पत्तों को इस कदर कुतर-कुतरकर खाते हैं कि उनकी सख्त-मोटी शिराएँ ही बची रह पाती हैं।

अब तक मैं समझ चुका हूँ कि यह किसी कीट का लार्वा ही है। मेरे कौतूहल को देख-समझकर क्रिशा मुझे कुछ और बताना चाहती है। क्रिशा ने बताया कि हर साल आम के पेड़ से कैरी तोड़ने के बाद जैसे ही बरसात शुरू होती है कि पानचूंचड़े पत्तों पर आ जाते हैं।

उसने मुझसे कहा कि ज़रा पेड़ पर लगे पत्तों पर देखें। मैं जब आम के पेड़ पर पत्तों पर नज़र डालता हूँ तो पत्तों पर मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। मैं एक...दो...तीन पत्ता-दर-पत्ता देखना शुरू करता हूँ। मैं बुदबुदाया—''कहाँ चले गए सबके सब?'' अबकी बार क्रिशा ने हँसते हुए कहा—''अंकल पत्तों के ऊपर कुछ दिखाई देने का नहीं। ...पत्तों को उलटकर देखो।''

क्रिशा ने आम की डाली को पकड़ा और पत्तियों को घुमाकर नीचे की ओर करके चिपके हुए जीव को दिखाया। ''ओह ये तो पत्ती के नीचे बैठा है''—मैंने ताज्जुब करते हुए कहा।

फिर एक सवाल का जन्म हुआ कि पत्ते की ऊपरी सतह पर एक भी जीव नहीं दिख रहा है। आखिर क्यों? मैं और क्रिशा सोच में पड़ गए। कुछ-कुछ समझ में आया कि ज्यादातर कीट पत्तों की निचली सतह पर ही रहते हैं। मगर ऐसा क्यों?

कुछ-कुछ और समझ में आने लगा कि बरसात की बूँदों से बचने में इनको पत्ते की निचली सतह पर सुरक्षित रहने में मदद मिलती है। हालाँकि इन दिनों धूप तो बिलकुल नहीं होती है यहाँ पर। सूर्यनारायण को तो बादलों ने अपने कब्जे में कर रखा है। बरसात की बौछारों से बचने का इन जीवों के पास एक ही तरीका होता है—पत्ती की निचली सतह पर सुस्ताना। जो और भी दिलचस्प बात लगी वह यह कि ये जीव आम के पत्तों की बीच वाली मोटी शिरा पर इस कदर अपने आपको फिट कर लेते हैं कि पता ही नहीं चलता कि कोई जीव यहाँ है भी।

एक बात तो यह समझ में आई कि पत्ती की निचली सतह इन जीवों को सुरक्षा प्रदान करती होगी।

क्रिशा जो कि नौ साल की बच्ची है, उसको यह तो पता नहीं कि आखिर ये कहाँ से आते हैं। उसको यह भी पता नहीं कि ये किसी कीट के लार्वा हैं। वह सीधे-सीधे जो देख सकती है या उसने जो अनुभव किया उसका बखान वह बड़े अच्छे से कर रही थी। क्रिशा ने कहा कि, ''ये आम के पत्तों को खाते हैं।'' उसने उंगली से इशारा करते हुए बताया—''इस पत्ती को इन्हीं जीवों ने चट कर डाला है।''

...शाम हो चली है। मैं देखता हूँ कि गौरेयों का झुंड कोलाहल कर रहा है। गौरेया कुछ ज़मीन पर तो कुछ पेड़ों पर अठखेलियाँ कर रही हैं। क्रिशा और मैं कुछ देर तक उनकी अठखेलियों को निहारते रहे। तभी क्रिशा ने मुझे कोहनी से इशारा करते हुए धीरे से कहा—''वो चरकली उस कीट को खा रही है।''

अब हमारी बारी थी उसकी ओर ध्यान से देखने की। गौरेया कीट को चोंच में दबाकर बार-बार ज़मीन पर पटक-पटककर मारने की कोशिश में लगी हुई है। गौरेया ने लार्वा को बड़ी तरकीब से अपनी चोंच में पकड़ा और फिर उसको करारा झटका दिया कि उसकी मांसपेशियाँ और अंग ढीले पड़ जाए। करीब 5-7 झटके देने पर लार्वा अधमरा हो चुका है। अब गौरेया उस लार्वा के अंदर चोंच घुसाकर खाने पर तुली हुई है।

अब तक हमें यह समझ में आ गया कि यह किसी तितली का लार्वा (केटरपिलर) है। इसको ध्यान से देखा तो पाया कि इसके शरीर पर कुछ काँटों जैसी रचनाएँ हैं। छोटे लार्वा के शरीर पर ये काँटे नरम होते हैं मगर बड़े लार्वा में ये कड़े और काले रंग के हो जाते हैं। ज़रा सावधानी से इन काँटों को छुआ तो लगा कि ये काफी नुकीले हैं। अब हमारे सामने चुनौती यह थी कि इसका सिर किधर है। दरअसल, इस लार्वा के दोनों सिरों पर ही नुकीले उपांग भी बराबर संख्या में हमको मिले। आप स्वयं ही देखें कि दोनों सिरों पर दो-दो जोड़ी उपांग और इनपर खूब सारे काँटे जैसी रचनाएँ। हमें लगा कि यह भी एक अजीब पहेली है। इस लार्वा के दुश्मनों के लिए यह पता करना इतना आसान नहीं होता कि मुँह किधर है।

हमारे लिए यह अनुमान लगा पाना आसान था कि ये जिधर को खिसकते हैं वही इनका मुँह वाला हिस्सा होगा। बस फिर क्या था। जब ये ज़मीन पर खिसक रहे थे तो पाया कि चौड़े सिरे से आगे की ओर बढ़ रहे थे। ज़मीन पर जब ये खिसक रहे थे तो पाया कि इनकी गति काफी धीमी है—वैसी ही जैसी कि घोंघे की गति। गति धीमी हो भी क्यों न, आखिर ये पत्तों के रहवासी हैं। मगर हमने एक बात और नोटिस की कि ये पत्तों पर भी काफी धीमे-धीमे खिसकते हैं।



अन्य पहलू

इस लार्वा के पहलू हैं जिनके बारे में हम कुछ कम ही जानते हैं। जैसे कि यहाँ के लोगों को यह नहीं पता कि इससे कोई वयस्क जीव निकलता है। वो तो इतना ही जानते हैं कि यह कुछ दिनों के बाद मर जाता है या कहीं चला जाता है। बहरहाल, मुझे पता था कि चूँकि यह लार्वा है, इसलिए इससे प्यूपा ज़रूर बनेगा जो लार्वा के बनिस्पत व्यवहार और आकार आदि में एकदम अलग होगा।

जब इसके बारे में किताबों को टटोला तो पता चला कि यह किसी तितली का लार्वा है। मगर एक बात तो साफ थी कि तितली को इन दिनों आम के पेड़ पर मैंने कभी नहीं देखा। इतना ही नहीं जब आम पर मोहर आते हैं, तब भी नहीं। इसका मतलब यह कि तितली अपना भोजन-पानी कहीं और से पाती है मगर अंडे आम की पत्तियों पर देती है। बेशक, कायांतरण की यह अजीब कहानी है। वयस्कों का भोजन, उनका आकार और रहवास आदि अपनी संतानों से एकदम जुदा।

कोसम का कीड़ा

सड़क के बाजू की बागड़ में अकाव की झाड़ी में पत्तियों पर जैसे ही निगाह गई तो पाया कि इस पर कीटों का जमावड़ा है। कुछ छोटे तो कुछ बड़े। पहली नज़र में एक किस्म का काला भँवरा फूलों पर मँडराता दिखाई दिया। काले रंग के भँवरे ने मानो एक फूल के साथ कुछ बातचीत की और फिर दूसरे पर चला गया और फिर तीसरे पर...। उसका यह सिलसिला चलता ही रहा। थोड़ा और ध्यान से देखा तो पत्तियों के नीचे लाल-काले रंग के कीट डेरा जमाए थे। लगता है कि ये पत्ती की निचली सतह पर अपने आपको सुरक्षित पाते हैं। ज़ाहिर है कि पत्ती की निचली सतह पर अन्य शिकारी जंतुओं का ध्यान भी नहीं जाता होगा।



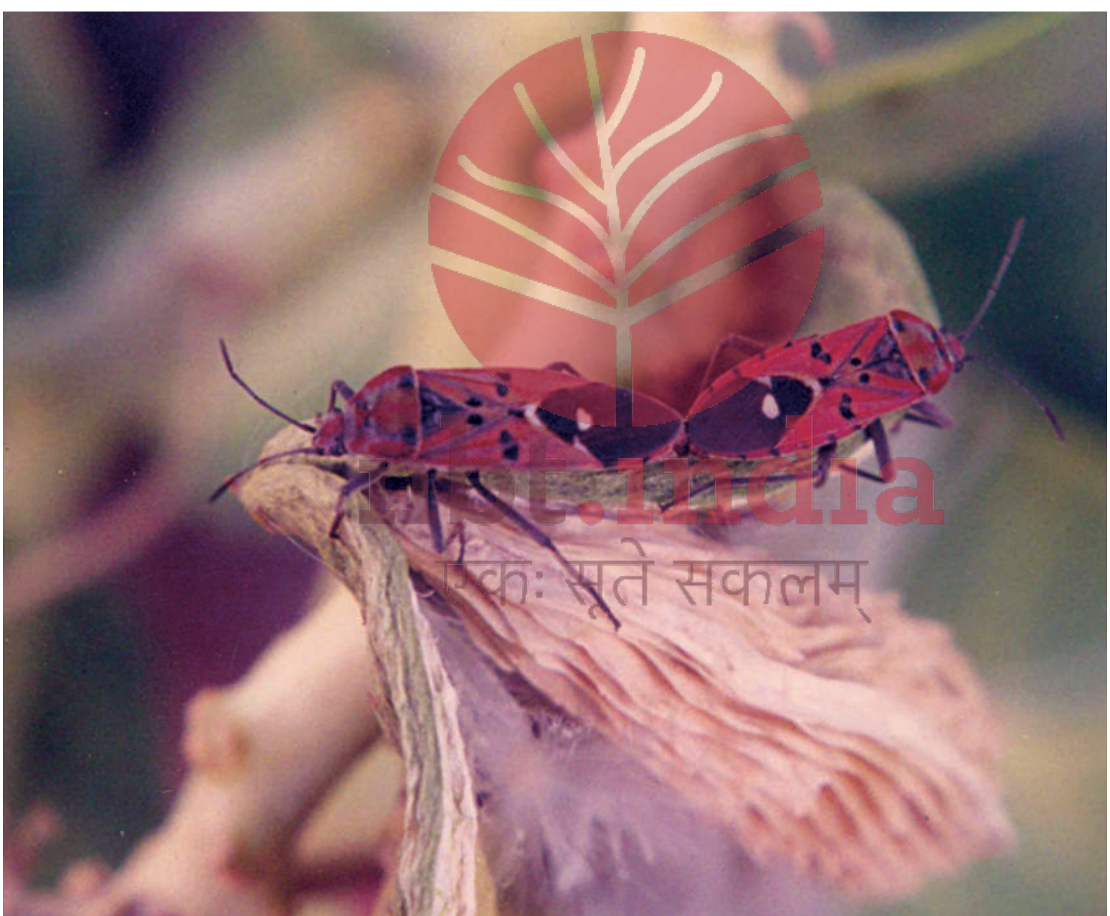
यह कीट कुछ जाना-पहचाना-सा दिखाई दे रहा था।

लाल रंग का कीट जिस पर कुछ काले धब्बे होते हैं। इसको अकेले में तो कम ही देखा है। जब जोड़े में होते है तो ये पीछे की तरफ से एक-दूसरे से चिपके हुए होते हैं।

इस कीट का नाम है—रेड कॉटन बग यानी कि कपास का कीड़ा। यह कपास की खड़ी फसल पर भी खूब पाया जाता है। इसीलिए इसको कपास के कीड़े के नाम से जाना जाता है। यह कीट कोसम के पेड़ पर भी पाया जाता है। इसीलिए इसको कोसम का कीड़ा भी कहा जाता है।

कपास का कीड़ा उस समूह का कीट है, जिससे खटमल आते हैं। इस समूह के कीट पौधों का रस पीते हैं। कुछ ऐसे हैं जो अन्य कशेरुकियों का खून पीते हैं।

कपास के कीट के जीवन में मक्खी या तितली के समान लार्वा, प्यूपा जैसी अवस्थाएँ नहीं होतीं। अर्थात् इनमें कायांतरण नहीं होता। अंडों से निकलने वाले बच्चे अपने माता-पिता से काफी समान होते हैं। कपास के कीड़े भी वयस्कों की भाँति ही पौधों का रस चूसना शुरू कर देते हैं।



आप चाहें तो इस कीट के जीवन चक्र का अध्ययन कर सकते हैं। किसी चौड़े मुँह की काँच की बोतल में इस कीट के जोड़ों को पकड़कर रख दीजिए। साथ ही उसमें उस पेड़ की पत्तियाँ भी डाल दीजिए, जहाँ से इनको पकड़ा है।

इस बात का ध्यान ज़रूर रखिए कि बोतल में हवा का आना-जाना बना रहे। इस लिहाज़ से बोतल के ढक्कन में छोटे-छोटे छेद कर दीजिए।

बोतल में अवलोकन करते रहें।

क्या आप इस कीट के अंडे देख पाए?

वास्तव में कायांतरण की प्रक्रिया से कपास का कीड़ा अछूता रह गया। ऐसे और भी कीट हैं जो जन्म से ही माता-पिता के समान दिखाई देते हैं और बर्ताव करते हैं। ज़रा अपने आसपास निगाह तो डालिए।

थूक का कीड़ा

बगीचे में घूमते हुए एक सुंदर-से पौधे का पत्तियों और कोमल टहनियों पर थूक गोले चिपके देखकर बचपन की याद ताज़ा हो आई। जब हम स्कूल में पढ़ने जाते थे तो रास्ते के आजू-बाजू के पौधों पर थूक के गोले चिपके देखने को मिलते थे। तब यही ख़याल आता था कि सड़क पर चलते हुए किसी ने इन पौधों पर थूक दिया है। हममें से कई इन थूक के गोलों को देखकर नाक-भौं सिकोड़ते थे। पर मेरे मन में यह विचार आता था कि पौधों पर इतना सारा किसने थूका होगा?

इस बात को जानने के लिए मैंने जो कुछ भी किया उसे दोस्तों ने गंदा काम समझा। हुआ यूँ कि एक दफ़ा मैंने तिनके से थूक को कुरेदा तो देखा कि अंदर कोई



कीड़ा कुलबुला रहा है। तब मैंने यही अंदाजा लगाया कि कोई कीड़ा उस थूक में अंदर घुस गया होगा या फिर कोई कीड़ा बैठा होगा और उस पर किसी ने थूक दिया होगा।

खैर तब बात आई-गई हो गई। लेकिन पिछले दिनों बगीचे में उस थूक और कीड़े के रहस्य को जानने का मौका मिला तो मामला रोचक हो गया। पहली बात तो यह पता चली कि पेड़-पौधों पर किसी इंसान ने नहीं थूका बल्कि यह तो एक कीट का कमाल है। अचरज की बात है।

खुद थूकेगा और...

असल में एक किस्म के कीट का बच्चा खुद 'थूकता' है और फिर उसके अंदर घुसकर आराम फरमाता है। दरअसल यह थूक एक प्रकार की कीट के बच्चे के शरीर से निकला द्रव है जिसे वह स्वयं झाग का रूप देता है। चूँकि कीट का बच्चा थूक जैसे पदार्थ के अंदर रहता है, इसलिए इसे 'थूक का कीड़ा' और अंग्रेजी में 'स्पीटल इंसेक्ट' के नाम से जाना जाता है। बरसात के दिनों में फसलों और अन्य पौधों पर इसको आसानी से देखा जा सकता है।

थूक के कीट की मादा पौधों की पत्तियों व तनों पर अंडे देती है। अंडों से जो जीव निकलता है वह अपने माता-पिता से काफी मिलता-जुलता है। अंडों से निकला बच्चा पौधों का रस चूसकर अपना पेट भरता है और इस दौरान वह अपने मलद्वार से एक तरल पदार्थ छोड़ता है। एक तरफ तो वह तरल पदार्थ छोड़ता है और वहीं दूसरी तरफ अपने पेट में स्थित एक वाल्व युक्त छेद से इस तरल पदार्थ में हवा फूँकता है। जब हवा इस तरल पदार्थ पर पड़ती है तो उसमें खूब सारा झाग बन जाता है, जो थूक जैसा दिखता है।

इस झाग युक्त तरल पदार्थ के भीतर शिशु कीट रहने लगता है। आप सोच रहे होंगे कि यह भोजन कहाँ से और कैसे करता है? दरअसल यह जिस पौधे पर रहता है, वहीं पर—थूक के गोले से बाहर निकले बिना ही—अंदर-ही-अंदर पौधे का रस चूसता रहता है।

सुरक्षा कवच

कीट के शिशु को इस झागदार तरल पदार्थ से सुरक्षा प्राप्त होती है। यह तरल पदार्थ चिपचिपा और बदबूदार होता है अतः कोई अन्य शिकारी जंतु इसके नजदीक भी नहीं फटकता। यही कारण है कि चरने वाले जानवर ऐसे पौधों के पत्तों आदि को नहीं खाते। यह कीट बरसात के दिनों में कई फसलों जैसे मूंग, उड़द आदि पर भी देखा जाता है।

थूक के कीड़े की लगभग 2000 प्रजातियाँ देखी गई हैं। वयस्क कीट की लंबाई डेढ़ से.मी. होती है। इस कीट की कुछ किस्में ऐसे पदार्थ का स्राव करती हैं जो घोंघे के शरीर पर पाए जाने वाले खोल जैसा कड़क हो जाता है। शायद यही वजह थी कि किसी समय जीव-शास्त्रियों ने इस कीट को कड़क खोल के आधार पर भ्रमवश घोंघे के साथ वर्गीकृत कर दिया था। मगर बाद में इसे कीट समूह में रखा गया, जो उचित है।

तो अब आपको जहाँ कहीं भी किसी वनस्पति पर थूक जैसा कुछ दिखाई दे तो आप नाक-भौं मत सिकोड़िए क्योंकि यह उस कीट की करामात है जो अपनी सुरक्षा के लिए ऐसा करता है।

संतान की परवरिश का अनोखा तरीका

सितंबर महीने की दोपहरी का वक़्त है। मैं अपने घर में बैठा हूँ। तभी देखता हूँ कि एक कत्थई-पीले रंग का पंखदार कीट गुन-गुन करता हुआ बार-बार घर के अंदर घुसता और लौट जाता है। इस बार मैं उसे ध्यान से देखता हूँ तो पता चलता है कि उसने अपनी टाँगों में हरे रंग की कोई एक चीज़ पकड़ी हुई है। उस हरे रंग की लंबी-सी चीज़ को उसने कमरे की दीवार के कोने में मिट्टी के घरौंदे में बने एक छेद से घुसा दिया। आश्चर्य इस बात का हो रहा था कि मिट्टी का इतना सुंदर घरौंदा भी बना डाला। सोचते हुए कुम्हार की याद ताज़ा हो आई जो सुंदर-सुंदर मटकी, सुराही वगैरह बनाते हैं। मगर मैंने सोचा कि हो न हो कुम्हार ने मटकी, सुराही इन्हीं कीटों के घरौंदों को देखकर सीखी हो।

हम ततैया को इस रूप में जानते हैं कि यह डंक मार देती है। इसका डंक काफी जलन करता है। एक किस्म की ततैया घर में सुरक्षित जगह पर, बिजली के मीटर के इर्द-गिर्द, छतों के कोनों में छत्ता बना लेती है।

ततैया की दुनिया में झाँककर देखें तो यह दुनिया अचरज से भरी पड़ी है। दरअसल ततैया कीट समूह का सदस्य है। कीट समूह में ततैया का व्यवहार एकदम जुदा है। कुछ सामाजिक जीवन जीते हैं तो कुछ अकेले। अकेले जीवन जीने वाली ततैया की कुछ किस्में अद्भुत व्यवहार करती हैं।

मेरी जिज्ञासा बढ़ती है कि आखिर मामला क्या है। अगली बार जब वह घर के अंदर आया तो मैंने उसको ध्यान से देखा कि आखिर वह अपने पैरों में दबाकर क्या-क्या लाया है। मैंने देखा कि वह अपनी टाँगों में इल्ली को दबाकर लाया है और

अब वह मिट्टी के घरौंदे में बने दूसरे छेद में उस इल्ली को दफन कर रहा है। जो इल्ली उस पंखदार कीड़े की टाँगों में दबी हुई है, लगता है वह ज़िंदा है मगर बेहोशी की हालत में है। मेरे लिए मामला और भी दिलचस्प हो जाता है।

पंखदार कीड़े को देखने पर लगा कि यह एक किस्म की ततैया है। जिस ततैया की बात की जा रही है वह मिट्टी का घरौंदा बनाती है। मेरे दिमाग में कई सवाल उमड़ने लगे। एक तो यह कि आखिर मिट्टी का इतना सुंदर घरौंदा कैसे बनाया होगा। मैंने घरौंदे को छुआ तो पाया कि यह काफी मज़बूत है।

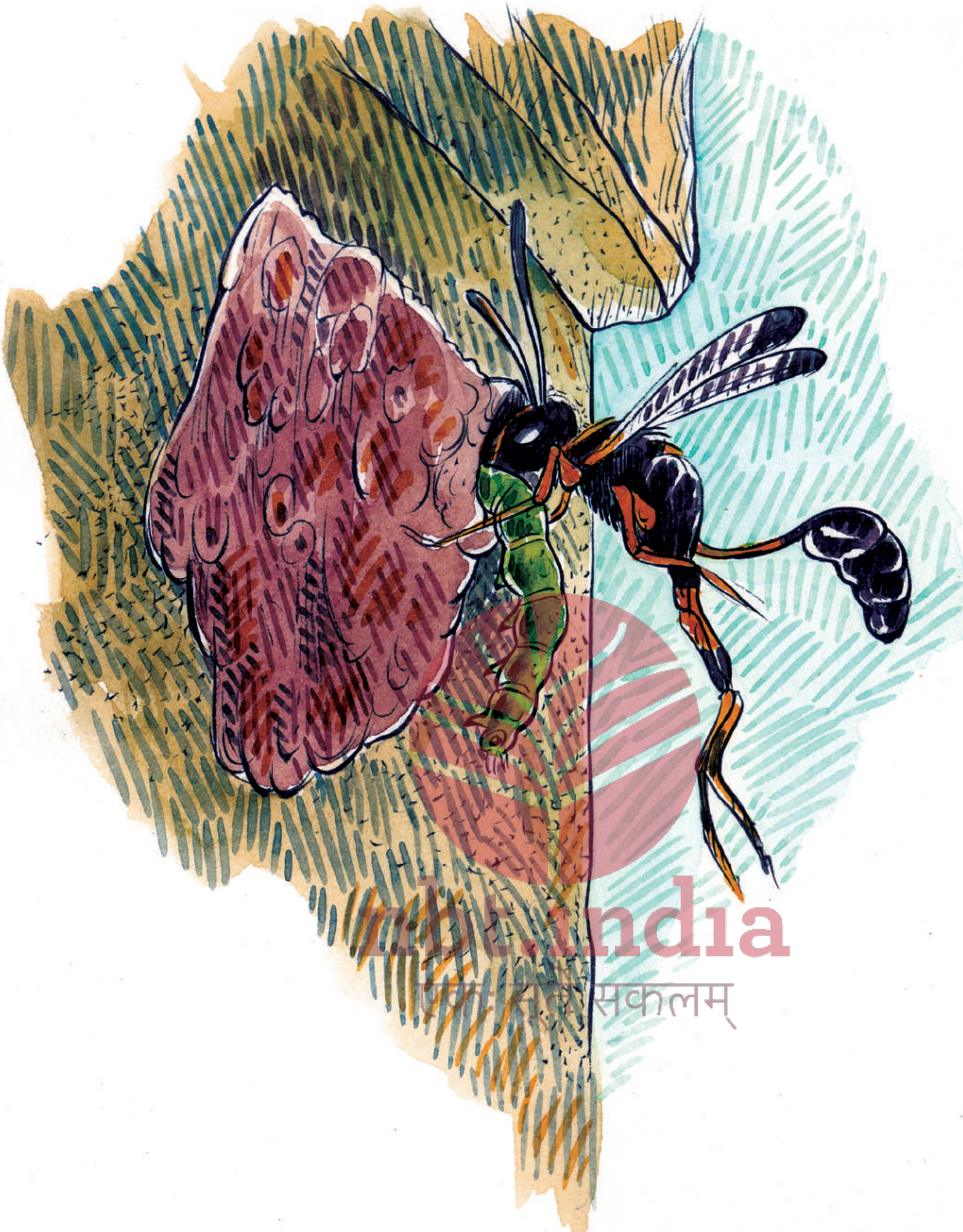
जिस ततैया की हम बात कर रहे हैं वह मिट्टी का घरौंदा बनाती है और उसमें अंडे देती है। इतना ही नहीं, अंडों में से निकले बच्चों की परवरिश के लिए उसमें ज़िंदा इल्लियों को दफन करती है। आइए, देखते हैं इस पूरे मामले को।

सबसे पहले मादा ततैया गीली मिट्टी की तलाश करती है। वहाँ से गीली मिट्टी की गोलियाँ बनाकर अपने मुँह और टाँगों में दबाकर ऐसे स्थान पर लाती है जहाँ उसको घरौंदा बनाना होता है। यह प्रक्रिया ततैया को बार-बार दोहराना पड़ता है। और इस प्रक्रिया में उसकी काफी ऊर्जा भी खर्च होती है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि ततैया जो घरौंदा बनाती है, वह मटके के आकार से काफी मिलता-जुलता होता है। हो सकता है कि इंसान ने मटका बनाने की कला इसी ततैया से सीखी हो। चूँकि मटके की आकृति से मिलता-जुलता घरौंदा होता है, इसीलिए इसको अंग्रेजी में **पॉटर वास्प** और हिंदी में **कुम्हार ततैया** के नाम से जाना जाता है।

ततैया अपने अंडों-बच्चों की परवरिश के लिए एक नायाब तरीका अपनाती है। दरअसल यह सुंदर सा घरौंदा बनाकर उसमें बच्चों की खुराक के लिए ज़िंदा इल्लियों को दफन करती हैं मगर खुद शाकाहारी होती है। जब अंडों में से बच्चा निकलता है तो वह इन बेहोश की गई इल्लियों को अपना आहार बनाता है।

पॉटर वास्प सामाजिक जीवन नहीं जीती, बल्कि एकांतवासी होती है। यह बर्र से आकार में बड़ी होती है।

सबसे पहले मादा ततैया गीली मिट्टी का स्रोत ढूँढ़ती है और किसी सुरक्षित स्थान



पर घरौंदा बनाने की शुरुआत करती है। बार-बार गीली मिट्टी के स्रोत तक जाना, मिट्टी की गोलियाँ बनाना और घरौंदे तक लाना काफी थका देने वाला काम होता है। घरौंदे को मज़बूत बनाने के लिए वह अपने मुँह से स्रावित कुछ तरल पदार्थ मिलाती है। अगर इस घरौंदे की मज़बूती की बात करें तो यह काफी दृढ़ और टिकाऊ होता है।

एक घरौंदे में एक से लेकर तीन या चार कक्ष होते हैं। प्रत्येक कक्ष स्वतंत्र होता है। ये कक्ष ततैया की संतान के लिए होते हैं। इन्हें ततैया के बच्चों का पालना घर कहा जाना अनुचित नहीं होगा। बहरहाल, अब ततैया के लिए अगली चुनौती होती है अपनी संतानों के लिए भोजन की व्यवस्था करना। ततैया की संतान का भोजन होता है मांसाहार इल्लियाँ। हैं न मज़ेदार बात कि एक प्रजाति की संतान किसी और प्रजाति की संतानों को भोजन बनाकर अपने अस्तित्व को कायम रखती है।

ततैया के लिए मशक्कत भरा काम होता है इल्लियों को खोजना और उनको बेहोश करके घरौंदे तक उठाकर लाना। यह देखा गया है कि इल्लियों का आकार और वजन ततैया के बराबर या उससे भी ज़्यादा हो सकता है। यानी कि ततैया अपने बराबर या कहीं ज़्यादा वजन उठा सकती है।

यह भी देखा गया है कि ततैया एक कक्ष में 6 से 8 इल्लियों को दफन करती है। अर्थात् अपनी एक संतान के भोजन के लिए काफी मशक्कत करती है। जब मादा ततैया को यकीन हो जाए कि उसकी संतान के लिए आहार के पुख्ता इंतज़ाम हो गए हैं तो फिर वह उस कक्ष में एक अंडा देती है और फिर कक्ष को मिट्टी से बंद कर देती है।

पॉटर वास्प के अंडों से निकला जीव दफन की गई इल्ली को अपना आहार बनाता जाता है। यह देखा गया है कि ततैया के अंडे में से निकला जीव दफन की गई इल्ली को पूरा नहीं खाता बल्कि उसके अंदर का रस चूसता है और अंत में बच जाता है इल्ली का खोल।

है ना दिलचस्प मामला कि जो वयस्क ततैया फूलों का रस चूसकर अपना पोषण करती है वहीं अपनी संतान की परवरिश के लिए इल्लियों को बेहोश करके उनके लिए मांसाहार भोजन की व्यवस्था करती है।

काँटों का घरौंदा

मौसम बरसात का है। बरसात थोड़ी सी थमी और मैं घूमने निकल पड़ा। मैंने नज़र जैसे ही ज़मीन पर डाली कि काँटों के खोल में घुसा हुआ एक नन्हा सा अजूबा दिखाई दिया। नन्हा सा यह जीव इतना धीमे-धीमे खिसक रहा था कि मानो कछुए से धीमे चलने की शर्त लगाई हो। मैं कुछ देर तक इस कीट को देखता ही रहा। मेरे कदम इस नन्हें जीव के अजूबेपन को निहारने के लिए रुक गए थे। काँटों के खोल को घसीटता हुआ चला जा रहा था और ज़मीन पर पीछे की तरफ अपनी घसीटने के निशान छोड़े जा रहा था।

मैंने इस नन्हें से जीव को हल्के से जैसे ही छुआ कि उसने अपने सिर को काँटे के खोल में अंदर वैसे ही खींच लिया जैसे कि कछुआ अपने शरीर को खोल में बंद कर लेता है। काँटे का खोल ओढ़े जीव काफी संवेदनशील प्रतीत हुआ। इससे भी कहीं ज़्यादा अजूबापन था उसके बदन पर काँटों का खोल। यकीन कीजिए, एक नन्हें से



जीव के लिए काँटों को एक-एक करके एकत्र करना और काँटों को बड़े सलीके से एक ख़ास तरह से सटाकर चिपकाना कोई मामूली बात तो नहीं!

बरसात के दिनों में जंगल, बाग-बगीचे या रास्ते में आपने काँटों या तिनकों को चिपककर रहने वाले कीट को ज़रूर देखा होगा। इस नन्हें जीव को देखकर सहसा कई सवाल दिमाग में उमड़ते हैं। मसलन यह काँटों या तिनकों को इतने सलीके से कैसे चिपकाता होगा? आदि।

दरअसल, जो जीव इन तिनकों में चिपककर उनमें रहते हैं ये वयस्क जीव नहीं बल्कि पतिंगे की एक ख़ास प्रजाति की इल्ली होती है। यह इल्ली काँटों या तिनकों को एकत्र कर उनको सलीके से आपस में रेशम से चिपकाती है और खोल के अंदर रेशम का मुलायम अस्तर बनाकर उसमें रहती है।



दरअसल, यह पतिंगे (मॉथ) की प्रजाति है, जिसका नाम है साइकिड मॉथ (Psychid moth)। आमतौर पर हम जब काँटे के खोल और इसमें रहने वाली इल्ली को देखते हैं तो यह अहसास नहीं होता कि यह पतिंगे की संतान है। काँटों के खोल में रहने वाले इस जीव का वयस्क पंखदार पतिंगा है। चूँकि यह काँटे के खोल में रहता है इसीलिए इस कीड़े को 'काँटे का कीड़ा' भी कहते हैं। वैसे आपको काँटों के अलावा तिनकों को चिपकाए हुए इसी तरह के अनोखे जीव देखने को मिल सकते हैं। मगर इन सबमें एक समानता यह होती है कि ये सब के सब ख़ास प्रजाति के पतिंगों के लार्वा हैं, जिनकी अलग-अलग किस्में खोल बनाने के लिए अलग-अलग सामग्री इस्तेमाल करती हैं।

चलता-फिरता काँटे का खोल

जब मादा कीट अंडे देती है तो इनके फूटने पर लार्वा निकलता है। यह लार्वा बबूल के काँटों को इकट्ठा करके एक शानदार खोल बनाता है और उसमें रहता है। आमतौर पर कई कीटों में लार्वा-अवस्था में कीट काफी स्वच्छंद होकर बिना कोई आवरण ओढ़े रेंगते हुए दिखाई पड़ते हैं। परंतु यह लार्वा अपवाद है जो बाहरी वस्तुओं यानी कि काँटों या तिनकों का खोल बनाकर उसमें रहता है। इस अवस्था में यह अपने मुँह वाले हिस्से को अंदर-बाहर उसी प्रकार कर सकता है जिस प्रकार कछुआ अपने सिर को कड़े खोल में से अंदर-बाहर करता है। जब इसको छेड़ा जाए तो अपने आपको इस काँटे के खोल में समेट लेता है। कुछ दिनों तक यह लार्वा खोल को ओढ़े चलता-फिरता रहता है और फिर किसी वनस्पति की टहनी से खोल को चिपका लेता है।

टहनी से चिपका काँटे का खोल

आमतौर पर यह चलता-फिरता काँटों का घरौंदा बरसात के दिनों में ही दिखाई देता है। बरसात के बाद यह किसी पौधे की टहनी से चिपक जाता है। इस दौरान यह खाना-पीना बंद कर देता है और निष्क्रिय रूप से सुस्ताता रहता है।

मादा पतिंगा—नर पतिंगा

इस कीट का सबसे दिलचस्प पहलू यह है कि इसमें वयस्क मादा पतिंगा पंखविहीन और इल्लीनुमा ही होती है। मादा पतिंगा पूरी ज़िंदगी इसी खोल में रहती है। मादा वयस्क पतिंगे का संबंध बाहरी दुनिया से केवल हवा का ही होता है। बाकी वह इस खोल में ही रहती है।

नर पतिंगा खोल में से बाहर निकलता है और स्वतंत्र रूप से जीवनयापन करता है। काँटे के खोल को बाहर से देखकर यह तय कर पाना मुश्किल है कि यह नर का है या मादा का।

कैसे होता है प्रजनन

बरसात शुरू होने के दौरान नर पतिंगा इल्लीनुमा मादा पतिंगे (जो कि काँटे के खोल में बंद रहती है) से संपर्क स्थापित करता है। नर पतिंगा मादा पतिंगे से संपर्क करने के लिए उसके खोल के ऊपरी सिरे से एक छेद करता है और अपने शरीर के उदर यानी कि पेट वाले भाग को इस खोल में प्रवेश कराता है। नर पतिंगे का उदर वाला भाग खंडित होता है जिसको वह सुविधानुसार लंबाई में सिकोड़ या फैलाकर बड़ा कर सकता है। इस तरह उदर भाग को खोल में डालकर नर पतिंगा खोल में छिपी मादा के शरीर में शुक्राणु प्रवेश कर देता है। तत्पश्चात् मादा के शरीर में अंडों का निषेचन होता है। मादा पतिंगा उसी खोल में अपने आप को काफी सिकोड़ लेती है ताकि अंडों को रखने की पर्याप्त जगह बन सके। इस पुराने खोल में ही अंडे फूटते हैं और उनमें से छोटे-छोटे लार्वा निकलते हैं। लार्वा खोल में से बाहर निकलकर काँटे इकट्ठा करते हैं और उनको चिपकाकर नया घरौंदा बनाते हैं।

और अंत में

जब इसके बारे में गाँव के लोगों से पूछा तो उन्होंने बताया कि काँटे का कीड़ा हमारे पशुओं के लिए काफी खतरनाक होता है। ख़ासकर बकरियाँ अगर गलती से इसको पत्तियों के साथ खा लें तो वे मर जाती हैं। इस कीड़े को खाने से बकरी जुगाली नहीं कर पाती है। अंततः बकरी मर जाती है। गाँव वालों का यह भी कहना है कि वैसे तो बकरी जब पत्ते खाती है तो काफी ध्यान रखती है।

एक दूजे के लिए
हॉक पतिंगा और मधुमालती के फूल

कहानी है बरसात की एक शाम की। आँगन में मधुमालती की बेल में लगे फूलों पर एक तितलीनुमा कीड़ा मँडराता नज़र आया। मैंने इस ओर बहुत ध्यान नहीं दिया, पर मेरी बेटी ने बताया कि तितलीनुमा कीड़ा फूलों पर मँडराता है और वह अपने मुँह में कोई तिनकेनुमा चीज़ को दबाए हुए है। उस तिनके को अपने मुँह में पकड़कर उसे मधुमालती के नलीदार फूलों के अंदर डालता है। जब बच्ची की बात को सुना तो मैं भी पूरे मामले को जानने और समझने के लिए उत्सुक हो उठा। लेकिन तबतक देर हो चुकी थी। अर्थात् रात के अंधेरे में कीड़ों की फूलों पर आवाजाही कम हो गई थी। मैं दूसरे दिन की शाम का इंतज़ार करने लगा।

दूसरे दिन शाम को मैं मधुमालती की बेल पर निगाहें गड़ाए हुए था। इधर सूर्य अपनी रोशनी समेट रहा था, उधर पंखदार कीड़े पता नहीं कहाँ से तेज़ी से उड़-उड़कर



आने लगे और मधुमालती के फूलों पर मँडराने लगे। फूलों पर मँडराने के साथ ही उनके मुँह के आगे लंबी-सी तिनकेनुमा रचना दिखाई देने लगी जिसे वे नलीदार फूल के अंदर डालते और चंद सेकंड में बाहर निकालकर किसी और फूल की ओर मुखातिब हो जाते। भूरे रंग का कीड़ा जो दिखने में तितलीनुमा मगर उड़ने में तितली से कई गुना तेज़, मज़बूत पंख और शरीर के धनी उड़ते-उड़ते ही फूलों के अंदर ही कोई लंबी-सी, लचीले तिनके-सी चीज़ को डालते। मेरी जिज्ञासा बढ़ गई और यह पता करने में लग गया कि आखिर मामला क्या है।

कीटों की व्यापक दुनिया में एक जीव है कन्वलव्युलस हॉक मॉथ। इस मॉथ की सूंड की लंबाई सुनकर आप ज़रूर चौंक उठेंगे। जी हाँ, इसकी सूंड यानी कि प्रोबोसिस की लंबाई होती है लगभग 10-12 सेंटीमीटर। रात के अंधेरे में सक्रिय रहने वाला यह कीट भारत भर में हर कहीं मधुमालती और इसी तरह के झाड़ीनुमा वनस्पति पर, जिनमें नलीदार फूल लगते हैं, मँडराते हुए देखा जा सकता है। चूँकि यह कीट रात में विचरण करता है इस कारण से आम इंसानों की निगाहें इस पर नहीं पड़ती। यदि इसको सरसरी तौर पर देखें तो एक नज़र में तो यह हमिंग बर्ड का एहसास कराता है।

हमिंग बर्ड की ख़ूबी होती है कि यह उड़ते हुए ही फूलों का मकरंद पीता है। यद्यपि हमारे यहाँ की पुस्तकों में जो उदाहरण पेश किए जाते हैं वो ज़्यादातर दूसरे देशों में पाए जाने वाले कीटों के होते हैं। जब इन पुस्तकों को देखा जाता है तो आम जन की यह सोच बनती है कि ऐसे विचित्र कीट दूसरे देशों में ही पाए जाते होंगे। लेकिन यह मानना ठीक नहीं हैं। आइए अपनी भारत भूमि पर मिलने वाले विचित्र कीटों में से इस कीट के बारे में जानें।

यदि गौर से देखा जाए तो मज़बूत पंखों की बदौलत तेज़ी से उड़ने वाले इस पतिंगे को रात के अंधेरे में फूलों पर मँडराते हुए देखा जा सकता है। मज़बूत शरीर वाला यह पतिंगा फूलों पर बैठता नहीं बल्कि उड़ते हुए ही फूलों का मधुरस पीता है। हॉक पतिंगे तेज़, उड़ाकू और दिखने में काफी मज़बूत शरीर वाले होते हैं। लगभग 10-12 सेंटीमीटर लंबी सूंड वाला जब यह पतिंगा फूलों पर मँडराता है तो पंखों के फड़फड़ाने पर जो आवाज़ पैदा होती है वो दूर से हवाई जहाज की आती आवाज़ से मिलती-जुलती होती है।

इन पंखदार कीड़ों की आवाजाही चल रही थी। शायद कुछ देर उड़ते-उड़ते और फूलों पर मँडराते हुए थककर दीवार पर और यहाँ-वहाँ पनाह ले रहे थे। यह मेरे लिए अच्छा मौका था—उन कीड़े को इत्मीनान के साथ देखने और परखने का!

कीड़ा बनाम कीट बनाम पतिंगा

सबसे पहले तो यह पहचान एक झटके में हो गई कि यह एक कीट है क्योंकि शरीर तीन भागों (सिर, वक्ष और उदर) में बँटा हुआ और तीन जोड़ी टाँगें देखी गईं। हालाँकि कीटों के लक्षणों की फेहरिस्त में और चीज़ें भी जुड़ती हैं मगर यदि उपर्युक्त दो पहचान कर लें तो भी बात बन जाती है। हालाँकि मैंने उस कीट में कुछ और चीज़ें भी देखी, मसलन स्पर्शक (एंटिना), संयुक्त आँखें, आदि। सरसरी तौर पर ऐसा लगा कि यह तितली है। जब इसके बारे में और जानने की कोशिश की तो पता चला कि यह तितली नहीं है। वास्तव में यह एक पतिंगा है।

तितली और पतिंगे : पहचान मुश्किल नहीं

कीट समूह में तितली और पतिंगे एक ही समूह (लेपिडोप्टेरा) में आते हैं। तितली और पतिंगे दोनों में ही दो जोड़ी पंख और कुंडलित सूंड (प्रोबोसिस) होती है। सूंड की मदद से ये फूलों का मकरंद चूसते हैं। इसके बावजूद भी इनमें फर्क करना आसान होता है।

आमतौर पर तितलियाँ दिन में सक्रिय रहती हैं जबकि पतिंगे सूर्यास्त के बाद। ख़ासकर बरसात के दिनों में बल्ब और ट्यूबलाइट के आसपास मँडराने वाले तितलीनुमा कीट पतिंगे ही होते हैं।

तितली और पतिंगे में एक ख़ास अंतर होता है पंखों के फैलाव का। तितली जब बैठती है तो उसके पंख खड़े होते हैं जबकि पतिंगे के पंख ज़मीन की सतह के समांतर फैले रहते हैं। एक अंतर और है—तितली के स्पर्शक गठानदार होते हैं जबकि पतिंगे में मुलायम और रोएँदार।

जब पता चल गया कि यह पतिंगे की एक किस्म है तो फिर सवाल उठा कि आखिर उस तिनके का क्या हुआ जो उड़ते समय इसके मुँह के आगे दिखता है। मैंने

अनुमान लगाया कि कहीं ऐसा तो नहीं कि यह कहीं से उठाकर अपने मुँह में दबा लेता हो। मगर फिर दिमाग में आया कि तितलियों और पतिंगों में मकरंद चूसने के लिए एक ख़ास रचना होती है जो सूंड (प्रोबोसिस) कहलाती है। जब तितलियों और पतिंगों को फूल-पत्तियों का रस चूसना होता है तभी ये इस सूंड को खोलते हैं वरना यह घड़ी की स्प्रिंग के समान कुंडली खाई हुई मुँह के नीचे होती है। जब तितली फूलों का रस चूसती है तो वह फूल पर बैठती है और अपनी स्प्रिंगनुमा सूंड को तानकर लंबा करती है।

हल्के भूरे रंग के इस पतिंगे के शरीर पर कत्थई रंग के धब्बे पड़े होते हैं। आगे दो लंबे एंटिना और दो कत्थई रंग की कंपाउंड आँखें लिए यह कीट भारत में हर कहीं देखा जा सकता है। यह स्फींगिडी परिवार का सदस्य है। हॉक मॉथ मज़बूत शरीर वाले और तेज़ उड़ाकू होते हैं। इनकी उड़ने की गति 50-55 किलोमीटर प्रति घंटे होती है। यदि कहीं किसी जगह पर बैठ जाएं तो जल्दी से उड़ने में अपने आपको सक्षम नहीं पाते हैं। ये पहले अपने शरीर को वार्मअप यानी कि गर्म करते हैं। फिर धीरे से उड़ते हैं। क्या आप भी इन पतिंगों से रूबरू होना चाहते हैं? यदि हाँ तो इसके लिए रात में खिलने वाले नलीदार फूलों पर रात में ही निगाह रखनी होगी।

मुझे लग रहा था कि हो न हो यह तिनकेनुमा चीज़ इसकी सूंड हो। मैंने पतिंगे को पकड़ा और पेंसिल की नोक से सिर के नीचे खाँचे में से सूंड को निकालकर लंबा किया तो हम सबके लिए यह आठवें आश्चर्य से बढ़कर खोज थी—जनाब पतिंगे की सूंड निकली लगभग 10 सेंटीमीटर लंबी! यानी कि पतिंगे की लंबाई से सूंड कोई तीन गुना लंबी थी।

हॉक पतिंगों की ख़ासियत होती है कि ये उड़ते-उड़ते ही फूलों का मकरंद चूसते हैं, फूलों पर बैठते नहीं। जब पता चल गया कि यह तो इसकी सूंड है तो फिर कल्पना के घोड़े दौड़ने लगे। इस भूरे रंग के हॉक पतिंगे को फूल पर मँडराते देख मुझे हमिंग बर्ड की याद ताज़ा हो गई।

मज़बूत शरीर वाला यह पतिंगा फूलों पर बैठता नहीं, बल्कि उड़ते हुए ही फूलों का मधुरस पीता है। हॉक पंतिगे तेज़ उड़ाकू और दिखने में काफी मज़बूत शरीर वाले होते

हैं। लगभग 10-12 सेंटीमीटर लंबी सूंड वाला जब यह पतिंगा फूलों पर मँडराता है तो पंखों के फड़फड़ाने पर जो आवाज़ पैदा होती है वो दूर से हवाई जहाज की आती आवाज़ से मिलती-जुलती होती है।

एक-दूजे के लिए

हॉक मॉथ और नलीदार फूल वाली वनस्पति, ये दोनों साथ-साथ विकास (Co-Evolution) का एक बढ़िया उदाहरण पेश करते हैं। ज़्यादातर फूल जो रात में या सूर्यास्त के बाद खिलते हैं, वे सफेद या हल्के रंग के होते हैं और उनमें काफी महक होती है। महक की वजह से इस प्रकार के फूल कीटों को अपनी ओर आकर्षित कर पाते हैं। ऐसे अधिकांश फूलों का परागन पतिंगों के द्वारा हो पाता है। ज़्यादातर हॉक मॉथ में सूंड काफी लंबी होती है। 1862 में चार्ल्स डार्विन का ध्यान इस ओर गया कि मेडागास्कर में पाए जाने वाले आर्किड के नलीदार फूल में मकरंद ग्रंथियाँ एकदम पेंदे में लगभग 10-13 इंच गहराई में होती है। उनको अंदाजा नहीं था कि कोई कीट इतनी गहराई में मकरंद प्राप्त करता होगा और परागन करता होगा। परंतु वेलेस ने अनुमान लगाया कि हॉक मॉथ ही इसका परागन करता होगा। सन् 1903 में मेडागास्कर में एक हॉक मॉथ देखा गया जिसकी सूंड की लंबाई 11 इंच लंबी होती है।

हमने जो भूरे रंग का हॉक पतिंगा देखा इसका भी नलीदार फूल वाली वनस्पति से गहरा ताल्लुक दिखाई देता है। आँगन में लगे अकाव, रातरानी और पपीते के फूलों पर ये भूलकर भी नहीं पहुँचते। इस तरह के रिश्ते में 'लेन-देन' का खासा महत्व है—इस हाथ दो और उस हाथ लो।"

मधुमालती के फूल

हमने हॉक पतिंगे की तो खूब सारी चर्चा कर ली, मगर मधुमालती के फूल की बात किए बिना मामला अधूरा रह जाएगा। मधुमालती बेल वाली वनस्पति है। आप शहरों में इसको हर तीसरे-चौथे घर में देख सकते हैं।

मधुमालती की बेल पर लगे फूल गुच्छे में होते हैं, और दो रंग के दिखते हैं—एक चटक लाल रंग के होते हैं और दूसरे हल्के गुलाबी-सफेद रंग के। जब मधुमालती में कली खिलकर फूल बनती है तो फूल हल्के गुलाबी-सफेद रंग के होते हैं, और बाद में यही फूल चटक लाल रंग के हो जाते हैं।

कलियाँ आमतौर पर शाम को ही खिलकर फूल में बदल जाती हैं। और मज़ेदार बात यह कि पतिंगे इन हल्के गुलाबी-सफेद रंग के यानी कि ताज़ा खिले फूलों पर ही ज़्यादा मँडराते हैं। मैंने जितने पतिंगों को मधुमालती के फूलों पर मँडराते हुए देखा वे सभी के सभी अमूमन ताज़े फूलों पर ही मकरंद चूसते देखे गए।

ताज़े खिले यानी कि हल्के गुलाबी-सफेद फूलों पर ही क्यों मँडराते हैं पतिंगे? यह जानने के लिए दोनों तरह के फूलों को खोलकर देखा गया तो पाया कि हल्के गुलाबी रंग के फूल की नली में मकरंद ज़्यादा होता है। चटक लाल रंग के फूलों में मकरंद कम या बिलकुल ही नहीं होता।

मुझे इस पतिंगे की जीवशास्त्रीय नाम तो मिला मगर हिंदी नाम नहीं मिला। इसका जीवशास्त्रीय नाम है "एग्रियस कोनवोल्वी" है। अंग्रेज़ी में इसे कोनवोल्वस मॉथ कहा जाता है। यह पतिंगा अफ्रीका, यूरोप, एशिया से जापान तक, आस्ट्रेलिया तथा पेसिफिक आइलैंड में पाया जाता है। इसके बारे में एक जानकारी मिली कि यह प्रवासी (माइग्रेटरी) है। लेकिन इसके बारे में बहुत ज़्यादा जानकारी उपलब्ध नहीं है।

चींटियों का पत्तीघर

मैं कुछ समय से पेड़ों पर रहने वाली और पत्तों को चिपककर घरौंदा बनाने वाली एक ख़ास किस्म की चींटी के बारे में खोजबीन कर रहा हूँ। वैसे इन चींटियों को मैं बचपन से ही देखता आया हूँ। जब मैं कहीं जंगल में जाता तो इन चींटियों के दर्शन ज़रूर हो जाते। फिर बचपन के दिन जब आम के पेड़ों पर केरियाँ (आम) तोड़ने पर अक्सर लाल रंग की चींटियाँ बुरी तरह काट लेती थी। ये जहाँ भी काटतीं वहाँ काफी जलन होती थी।



तब इतना ही पता था कि ये चींटियाँ इन्हीं पेड़ों पर पत्तों को चिपककर, काग़ज़ की पुड़िया की तरह का घरौंदा बनाती और उनमें रहती हैं। घरौंदे के लिए चिपकाई गई पत्तियाँ सूख जातीं और सूखा हुआ घरौंदा ज़मीन पर गिर जाता तो उसको देखने पर उसमें कुछ सफेद चिपचिपा-सा धागेनुमा पदार्थ दिखाई देता था।

आखिर कैसे घोंसला बनाती होंगी ये चींटियाँ? इस सवाल का ज़वाब तब न तो स्कूल के शिक्षक ने दिया और न ही माता-पिता ने। खैर, तब बात आई-गई हो गई। लेकिन हाल ही में इस चींटी को देखा तो फिर से वही सवाल मेरे दिमाग में कौंधा जो बचपन में उठा था। जब मैंने इस चींटी के बारे में और जानकारी प्राप्त की तो वाकई मुझे काफी रोमांच का अनुभव हुआ।

आपने भी आम के पेड़ों पर इस लाल रंग की चींटी को ज़रूर देखा होगा। स्थानीय भाषाओं में इसे अलग-अलग नामों से जाना जाता है। मध्यप्रदेश के मालवा में इसे दूध मकोड़ी के नाम से जाना जाता है। कुछ आदिवासी इलाकों में इसे बरबूटा कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे वीवर आंट यानी कि 'जुलाहा चींटी' कहा जाता है।

ये चींटियाँ पत्तियों को आपस में चिपका-चिपकाकर अपना घर बनाती हैं। पत्तियों को चिपकाने के लिए एक पतले किंतु मज़बूत रेशम के धागे का इस्तेमाल करती है। जब मुझे यह पता चला कि पत्तियों को जोड़ने के लिए चींटी रेशम का इस्तेमाल करती है तो मेरी जिज्ञासा और भी बढ़ गई। मुझे इस बात की जानकारी है कि संपूर्ण जीव-जगत में मकड़ी ही एकमात्र जीव है जो अपनी वयस्क अवस्था में रेशम का निर्माण करती है। कीटों में ख़ासकर, तितली, पतिंगों आदि में अपने जीवन-चक्र की लार्वा से प्यूपा बनने की अवस्था में ही रेशम का निर्माण होता है। उसके बाद प्यूपा रेशम का खोल ओढ़कर उसमें दुबका रहता है जबतक कि अगली अवस्था की तैयारी न हो जाए। इसका मतलब यह हुआ कि वयस्क चींटी घोंसला बनाने के लिए आवश्यक रेशम का जुगाड़ कहीं और से करती होगी!

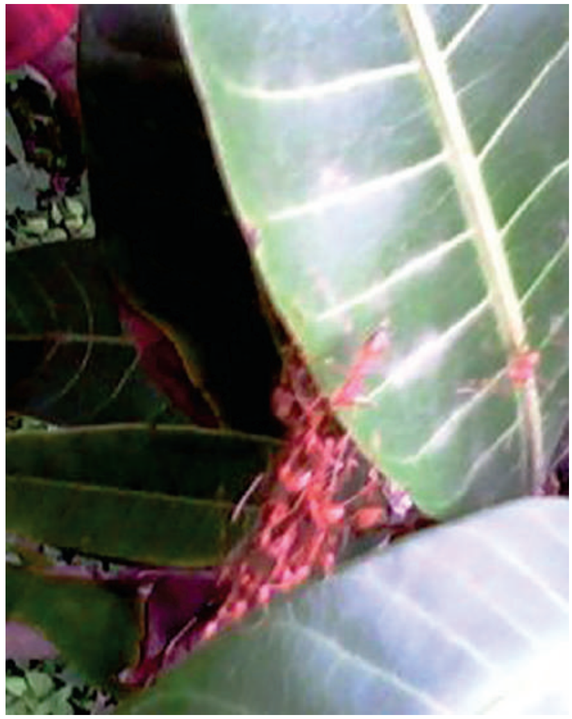
सबसे दिलचस्प मामला यह ये वयस्क चींटियाँ स्वयं रेशम का निर्माण नहीं कर सकतीं। बल्कि चींटियों का लार्वा रेशम बनाने की क्षमता रखते हैं। वयस्क चींटियाँ अपने लार्वा को एक औजार के रूप में इस्तेमाल करती है। जब घोंसला बनाने का वक़्त होता है तब कई सारे लाल रंग के चींटे जो वास्तव में श्रमिक होते हैं अपने मुँह में सफेद रंग की कोई चीज़ लिए दिखाई देते हैं। दरअसल, यह सफेद रंग की कोई चीज़ मादा चींटी के द्वारा दिए गए अंडे में से निकले हुए लार्वा होते हैं। मादा चींटी के अंडों

में से निकलने वाले लार्वा को श्रमिक चींटियाँ अपने मुँह में दबा लेती हैं। दिलचस्प बात यह कि श्रमिक चींटियाँ इन लार्वा को अपने मुँह में पकड़कर इनको घोंसला बनाने के लिए एक तरह से औजार के रूप में इस्तेमाल करती हैं।

यह तो हम जानते हैं कि पक्षी अंडे देने के पहले स्वयं ही घोंसला बनाते हैं। वयस्क पक्षी सामग्री इकट्ठा करते हैं और अपनी संतान की परवरिश के लिए घोंसला बनाते हैं। मधुमक्खियों में भी वयस्क मधुमक्खियाँ अपने शरीर से मोम का निर्माण करके मज़बूत छत्ता बनाती हैं। लेकिन जुलाहा चींटी में तो बात ही कुछ और है। वयस्क चींटियाँ घोंसला बनाने के लिए अपनी संतान के शरीर से निकलने वाले एक प्रकार के द्रव (जो कि तरल रेशम होता है) का इस्तेमाल पत्तों को चिपकाकर घोंसला बनाने के लिए करती हैं।

दरअसल, जुलाहा चींटियों में घोंसला बनाने की जिम्मेदारी होती है, वयस्क की। मगर वयस्क चींटियाँ रेशम का निर्माण नहीं कर सकतीं। इसलिए, कुछ श्रमिक चींटियाँ पत्तों को चिपकाने के लिए पास में लाती हैं। श्रमिक चींटियाँ लार्वा को अपने मुँह में दबाकर उनके द्वारा छोड़े जाने वाले चिपचिपे रेशम का इस्तेमाल पत्तों को चिपकाने के लिए करती हैं। श्रमिक चींटियों का कार्य बँटा हुआ होता है कि कौन पत्तों को पास में लाने का कार्य करेगी और कौन-सी लार्वा को अपने मुँह में दबाकर चिपकाने का कार्य करेगी। दरअसल लार्वा अपने मुंह में से चिपचिपा रेशम वैसे ही निकालता है जैसे कि कोई गोंद की शीशी को दबाने से गोंद बाहर निकलता है। रेशम की ख़ूबी होती है कि जैसे ही यह हवा के संपर्क में आता है कड़ा हो जाता है।

पत्तों को पकड़कर रखने वाली चींटियाँ पत्तों को कसकर पकड़ी रहती हैं। इस दौरान ये आपस में एक लड़ी-सी बना लेती हैं और पत्तियों को कसकर पकड़े रखती हैं। इसी दौरान अपने मुँह में दबाए श्रमिक चींटियाँ लार्वा को उत्तेजित करती हैं जिससे कि वे रेशम का स्राव करते हैं। श्रमिक चींटियाँ इन लार्वा को वैसे ही इस्तेमाल करती हैं जैसे कि धागा बुनने के लिए शटल होती है। श्रमिक चींटियाँ दो पत्तों को चिपकाने के लिए लार्वा को दो पत्तों के किनारों तक घुमाती रहती हैं। घोंसला बनाने की प्रक्रिया



एक मशीन की तरह होती है। पत्तियों को चिपकाने के काम में चींटियों की फौज लगी रहती है।

ये चींटियाँ आम के अलावा जामुन, महुआ गोंदी, करंद, शीशम, पीपल के पेड़ों पर भी पाई जाती हैं। एक और दिलचस्प बात कि इन लाल रंग की चींटियों की चटनी बनाई जाती है। अगर आप छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर के आदिवासी इलाके में जाएँ तो वहाँ लाल रंग की इस चींटी की चटनी बनाई जाती है। यहाँ के आदिवासी लोग इन चींटियों और लार्वा को सिलबट्टे पर पीसते हैं और इसमें मिर्च-मसाले मिलाकर बड़े ही चाव से खाते हैं। वैसे आप अगर बस्तर के हाट में जाएँ तो चींटी की चटनी को बेचते हुए देखा जा सकता है। चींटी की चटनी स्वाद में खट्टी होती है। यह खट्टापन इन चींटियों में अम्ल की वजह से होता है। यही वजह है कि जब ये चींटियाँ काटती हैं तो शरीर में अम्ल प्रवेश करा देती है। इस अम्ल की वजह से ही काटे गए स्थान पर काफी तेज़ जलन होती है।

चींटियों को फँसाने वाला चींटी चोर

कीटों की रहस्यमय दुनिया में एक अनोखा कीट है चींटीचोर। आपने इस कीट को भले ही न देखा हो लेकिन धूल भरे कच्चे रास्तों पर या बालू रेत में तेल भरने की कुप्पी जैसे नन्हें गड्ढे ज़रूर देखे होंगे। ये सलीके से बने गड्ढे हमारा ध्यान बरबस ही खींच



लेते हैं। हो सकता है कि आप में से कभी किसी ने इन गड्ढों में से आहिस्ते से नन्हें-से जीव को निकाला भी हो। इस गड्ढे को बनाने वाला एक किस्म का कीट का बच्चा होता है और वह इसी में रहता है और इसी गड्ढे में इस कीट के बच्चे के शिकार करने के औजार भी होते हैं।

दरअसल, इस गड्ढे को बनाने वाला और इसमें रहने वाला जीव वयस्क कीट नहीं बल्कि कीट का बच्चा होता है। वयस्क कीट और इसके लार्वा में ज़मीन-आसमान का फर्क होता है। वयस्क कीट के पंख होते हैं। नर और मादा एक सरीखे होते हैं। इनका रंग भूरा होता है, जिनपर लाल रंग की बिंदिया पड़ी होती है। सिर और आँखें बड़ी होती हैं जबकि इनके स्पर्शक छोटे होते हैं। इसकी ख़ूबी यह होती है कि यह आगे और पीछे दोनों तरफ चल लेते हैं। चींटी चोर का लार्वा रात्रिचर होता है जबकि वयस्क दिनचर।





मादा बालू रेत में या धूल में अंडे देती है। अंडों में से शिशु कीट यानी कि लार्वा बाहर निकलता है। यही हमारा परिचित चींटीचोर है। इसका सिर बड़ा और चपटा होता है। इसके मुँह में दो मज़बूत जबड़े होते हैं इन्हीं की मदद से यह शिकार को दबोचता है।

चींटी चोर एक मांसाहारी लार्वा है। यह अपने नाम को सार्थक करता है। यही बच्चा मिट्टी में सुंदर और सुडौल गड्ढे बनाता है। चींटी चोर का घर इस तरह का होता है कि कोई चींटी या नन्हा कीट आदि इस गड्ढे के किनारे पर आए तो वो फिसल कर इस गड्ढे में गिर जाता है। चींटी चोर को धूल के कणों में ज़रा-सी भी हलचल होने का एहसास हो जाता है। यदि कोई जीव इस ढलानदार गड्ढे में गिर जाए तो फिर उसका निकलना आसान नहीं होता। इस तरह से गड्ढे में छिपा चींटी चोर शिकार को धर दबोचता है। चींटी चोर अपने शिकार को पूरा नहीं खाता। बल्कि यह शिकार के अंदर का सारा भोज्य पदार्थ चूस लेता है। शिकार का खोल छोड़ देता है।

कुछ दिनों के बाद इस चींटी चोर में बदलाव आते हैं। अब यह अपने चारों ओर रेशम का खोल बना लेता है और खुद को इस खोल में बंद कर लेता है। कुछ दिनों के बाद इस प्यूपा में से वयस्क कीट बाहर निकलता है।

वयस्क को देखकर तो ज़रा भी नहीं लगता कि इसका लार्वा यानी कि बच्चा धूल के घर बनाकर कभी शिकार भी करता होगा।

शुक्राणुओं का सफरनामा
डेम्सल फ्लाई का अनोखा तरीका

अगर आपको अपने बचपन के दिन याद हों तो नीचे दिए गए चित्र को देखकर आपके मुँह से बरबस हेलिकॉप्टर, टिड्डा या ऐसा ही कुछ नाम निकल पड़ेगा। इनमें से एक का नाम है—'डेम्सल फ्लाई' और दूसरे का नाम है 'ड्रेगन फ्लाई'। बरसात के दिनों में इनके पीछे भागते हुए उन दिनों हम इन दोनों में कोई फर्क नहीं कर पाते थे। यदि जीवविज्ञान की भाषा में कहें तो ये दोनों कीट समुदाय के सदस्य हैं। डेम्सल का अर्थ होता है—ख़ूबसूरत, कमसिन किशोरी। दरअसल, यह कीट बला की ख़ूबसूरती लिए होता है। इसीलिए इसका यह नाम पड़ा।



डेम्सल फ्लाई का एक नातेदार है—ड्रेगन फ्लाई। ड्रेगन का अर्थ है—दैत्य, राक्षस। तेज़ गति से उड़ना, झपट्टा मारकर शिकार को पकड़ना; तथा इसकी बड़ी-बड़ी संयुक्त आँखें इसके नाम को सार्थक करती हैं। डेम्सल फ्लाई का शरीर नाजुक-सा और पंख रंगीन होते हैं। जब यह किसी टहनी वगैरह पर बैठता है तो पंख शरीर से ऊपर उठे रहते हैं।

कीट समुदाय में डेम्सल फ्लाई का समागम का तरीका काफी अनूठा है। नर डेम्सल फ्लाई में पूँछनुमा रचना के आखरी सिरे पर नीचे की ओर एक जनन छिद्र होता है जहाँ से शुक्राणु बाहर निकलते हैं,

लेकिन नर इस जनन छिद्र से शुक्राणुओं को मादा जनन छिद्र तक नहीं पहुँचाता। मादा से समागम के पहले नर डेम्सल फ्लाई शुक्राणुओं को अपने शरीर के दूसरे और तीसरे खंड में पेट के पास बनी थैलीनुमा रचना में भंडार करके रख देता है। इस रचना को शुक्राणु थैली या शुक्राणु कोश कहा जा सकता है।

शुक्राणुओं को शुक्राणु थैली तक पहुँचाने के लिए नर डेम्सल फ्लाई अपने शरीर के दुमनुमा हिस्से को (जहाँ जनन छिद्र है) इतना मोड़ता है कि जनन छिद्र शुक्राणु थैली (यानी शरीर के दूसरे-तीसरे खंड में) से जुड़ जाता है। फिर वह इसमें शुक्राणु छोड़ देता है। नर डेम्सल फ्लाई के जनन छिद्र के पास एक नुकीली रचना होती है जिसे क्लास्पर (Clasper) कहते हैं।

अब नर मादा डेम्सल फ्लाई की तलाश में निकल पड़ता है। जब मादा मिल जाती है तो नर क्लास्पर की मदद से मादा के सिर के पास के हिस्से को पकड़ लेता है। जब मादा नर की पकड़ में आ जाती है तो अगला चरण शुरू होता है—शुक्राणुओं को मादा के जनन छिद्र तक पहुँचाना। मादा के शरीर में भी दुमदार हिस्से के आखरी सिरे पर जनन छिद्र होता है। अब मादा अपने दुमनुमा हिस्से को मोड़कर नर की शुक्राणु थैली तक इस तरह ले जाती है कि उसका जनन छिद्र शुक्राणु थैली से जुड़ जाए। इस तरह शुक्राणु थैली से निकलकर मादा के जनन छिद्र में जाते हैं जहाँ वे अंडाणुओं को निश्चित करते हैं। निषेचित अंडों को मादा पानी पर या पानी वाले पौधों के पानी में डूबे तनों पर देती है।

रहस्यमय कनखजूरा

जैसे ही मैं बाथरूम में घुसा तो आहट पाकर एक लंबा-सा कई टाँगों वाला, तेज़-तर्रार जीव रेंगता हुआ कोने में बाल्टी के पीछे छुप गया। जब मैंने कोने में रखी बाल्टी को हटाया तो वहाँ से रेंगते हुए रफूचक्कर हो गया। देखते ही देखते उसने एक नई छिपने की जगह खोज ली थी। जी, हाँ मैं कनखजूरे की बात कर रहा हूँ। मेरा वास्ता कनखजूरे से जब-जब भी पड़ा मैंने उसे बड़ी तेज़ी से किसी अंधेरी जगह में पनाह पाते ही देखा है। ख़ास तौर पर रात के अंधेरे में ही आते हैं। अंधेरा इन्हें इतना पसंद है कि ट्यूबलाइट या बल्ब की रोशनी में भी ये कम ही आते हैं। बगीचे में मिट्टी जिसमें सड़ी-गली पत्तियाँ वगैरह हों या पत्थरों, ईंटों, के ढेर को उलट-पलट करते हुए कनखजूरे इधर-उधर रेंगते हुए देखना हर्षमिश्रित अनुभव देता है। ज़्यादातर लोग कनखजूरे को देखकर घबरा जाते हैं। इसकी वजह इसके शरीर की अनोखी बनावट और चाल है।



कनखजूरा ग्रामीण भारत का जाना-पहचाना प्राणी है। उत्तर भारत में इसका नाम कनखजूरा है, वहीं इसे राजस्थान में कांसला के नाम से जाना जाता है। पंजाब में कांकेल और महाराष्ट्र में कंसुई के नाम से जाना जाता है। बेशक, जहाँ मिट्टी और उसमें पेड़-पौधों के अवेशष सड़-गलकर ह्यूमस बना रहे होते हैं, जहाँ नमी की मात्रा ज़्यादा हो वहाँ कनखजूरे निवास करते हैं। ये रात को सक्रिय रहते हैं। दिन में कहीं नमी वाली जगह में दुबके रहते हैं। जहाँ पर पत्तियाँ वगैरह सड़ रही हों, उस जगह को जैसे ही कुरेदें तो केंचुए, गिंजाई और कनखजूरे के बीच आपाधापी मच जाती है। इन सबमें कनखजूरा एक ऐसा प्राणी है जो सरपट भागकर अपने को सुरक्षित जगह में छिपा लेता है।

कनखजूरा, (अंग्रेजी नाम सेंटीपीड) आर्थोपोड समूह का सदस्य है। आर्थोपोड समूह के जीवों में हड्डियाँ नहीं होती मगर शरीर के ऊपर कड़ा आवरण होता है। यह आवरण सख्त क्यूटिकल का बना होता है। टाँगें भी क्यूटीन की बनी होती हैं।

सेंटीपीड लेटिन नाम है जिसका अर्थ—*सेंटी* यानी कि सौ और *पीड* का अर्थ टाँगें। कनखजूरे में संयुक्त आँखें होती हैं। मगर आँखों की दृष्टि काफी कमज़ोर होती है। ये रोशनी और अंधेरे का फर्क भर कर पाते हैं। जाहिर है कि इन्हें अंधेरी जगह पर रहना होता है इस वजह से विकास के क्रम में इनकी आँखों का विकास नहीं हो पाया। कनखजूरे की पूरी बिरादरी में कुछ ऐसे भी हैं जिनमें आँखें होती ही नहीं। बिना आँखों वाली किस्में गुफाओं में रहती हैं। दिलचस्प बात यह कि गुफाओं या अंधेरे में रहने वाली किस्मों का रंग भद्दा होता है।

कनखजूरों की अब तक लगभग 8000 प्रजातियाँ खोजी जा चुकी हैं। इनमें से महज 3000 के बारे में ठीक से जानकारी उपलब्ध है। दरअसल कनखजूरे की समस्त प्रजातियों पर नज़र डालें तो इनमें से जिओफिलीडी समूह के कनखजूरों में 173 जोड़ी तक टाँगें हो सकती हैं। मगर ज़्यादातर कनखजूरों में 15 से 30 जोड़ी टाँगें होती हैं। कनखजूरों का शरीर खंडों में बँटा होता है। कनखजूरे में जितने खंड उतनी ही जोड़ी टाँगें होती हैं। एक और दिलचस्प बात कि कनखजूरे में टाँगों की संख्या विषम जोड़े में

होती है। अर्थात् 15, 17 या 19 जोड़ी न कि 16, 18 आदि। हाँ, ठीक ही समझा आपने, खंडों की संख्या भी विषम संख्या में ही होगी।

कनखजूरों के बारे में कुछ और बातें दिलचस्प हैं। इनकी आँखें तो होती हैं मगर इनकी दृष्टि कमज़ोर होती है। आँखों के जरिए इन्हें रोशनी या अंधेरे का आभास-मात्र हो पाता है। इनका शरीर चपटा होता है। सिर के अगले सिरे पर दो स्पर्शक (एंटिना) निकले रहते हैं, जो इसको आसपास की तमाम सूचनाएँ देते हैं। इसके जबड़े मज़बूत होते हैं जो शिकार को पकड़ने और उसको चीरने-फाड़ने में मदद करते हैं। सिर के आगे विषैले पंजे होते हैं। ये काफी नुकीले और मज़बूत होते हैं। विषैले पंजों का इस्तेमाल ये शिकार करने और खाते समय शिकार को पकड़ने और अपने बचाव के लिए करते हैं।

कनखजूरा का भोजन प्रमुख रूप से छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े हैं। कनखजूरे की आहार-थाली में बड़ा लचीलापन है। यह देखा गया कि विषम परिस्थितियों में इसे अगर मांसाहार न मिले तो ये सड़ी-गली पत्तियों को भी अपना आहार बनाने से नहीं चूकते। है न अपने अपनी प्रजाति को बचाए रखने का अचूक नुस्खा। कनखजूरे भी अनेक पक्षियों जैसे कि नीलकंठ, गौरेया तथा साँप, मेंढक, चमगादड़ आदि का शिकार बनते हैं।

कनखजूरे के बारे में अक्सर यह कहा जाता है कि ये कान के रास्ते से भेजे में घुस जाते हैं। इस बात में सत्यता केवल इतनी ही है कि ये रात में ज़मीन में सोने वालों के कान में घुस सकते हैं। संयोगवश ही कभी ऐसा हो सकता है, मगर यह कोई आम बात नहीं है। मैं कई आदिवासी इलाकों में ख़ासकर आवासीय आश्रमशालाओं में बच्चों के कानों में छोटे-छोटे कठोर कवच वाले भ्रंग (बीटल्स) वगैरह के घुसने की घटनाओं का साक्षी रहा हूँ। ख़ासकर बरसात में जहाँ बच्चे ज़मीन पर सोते-बैठते हैं उनके कानों में बीटल्स वगैरह घुस जाते हैं जो काफी कष्टदायक होता है। मगर कनखजूरे के कान में घुसने की घटना मेरे देखने-सुनने में नहीं आई। एक बार की बात है जब मैं किशोर भारती गया था और मेरे कान में एक बीटल्स घुस गया था। तब मैं भी पूर्वाग्रह से ग्रसित था कि हो न हो कनखजूरा ही कान में घुसा होगा। मेरे साथियों

ने भी यही शंका व्यक्त की थी। मगर जब डॉक्टर की मदद से कान को साफ किया गया तो पाया कि वह तो कड़े आवरण वाला बीटल्स है। इस बीटल्स ने मेरे कान में कुछ इस कदर धमाचौकड़ी मचाई कि शब्दों में बयाँ करना संभव नहीं। डॉक्टर की मदद से ही निकल पाया और वह भी मृत।

कनखजूरे के बारे में एक और बात पता चली। उत्तराखंड में कनखजूरे को कलछिंडी के नाम से जाता जाता है। यहाँ के लोगों का मानना है कि यह एक खतरनाक जीव है। इसलिए देखते ही इसे मारने की कोशिश की जाती है। कलछिंडी के बारे में एक किवदंती भी है। कहा जाता है कि कलछिंडी भगवान विष्णु के कान में घुस गई थी। इस वजह से भगवान विष्णु को काफी तकलीफ हुई थी।

कनखजूरा में नर और मादा अलग-अलग होते हैं। मादा जून से अगस्त के बीच अंडे देती है। अंडे देते समय मादा काफी सतर्क रहती है, अंडा पीछे के शरीर पर दो लंबे हुकनुमा अंगों में अटके रहते हैं। मादा उचित मौका पाते ही अंडे ज़मीन पर छोड़ देती है। और फिर अंडों को अपने पैरों की मदद से धूल में घुमाती है। अंडे के ऊपर लसलसा पदार्थ लगा रहता है, जिस पर धूल की परत चढ़ जाती है। और इस प्रकार इन अंडों पर शत्रुओं की नज़र नहीं पड़ पाती। अंडे सूर्य की गर्मी में सेहे जाते हैं। और अंडों से बच्चे निकलते हैं। कनखजूरे की कुछ प्रजातियाँ कुँआरी ही माँ बनती है। पार्थेनोजिनेसिस (अनिषेकजनन) का मामला कनखजूरों की कुछ किस्मों में भी देखा गया है। माँ बिना नर के अंडे जनती है। ज़ाहिर है कि इन किस्मों में नर होती ही नहीं।

कनखजूरा के बारे में यह कहना कि इसके काटने से मौत हो जाती है, सही नहीं है। पहली बात तो यह कि अगले खंड में मौजूद एक जोड़ी पंजे (फोर्सिपल्स) को चुभाता है। पंजे टाँगों छोटे किस्म के कनखजूरों के पंजे इतने मज़बूत नहीं होते कि इंसान की चमड़ी में चुभाए जा सके। हाँ, कुछ छोटे जीवों का शिकार करने में मददगार होते हैं। कनखजूरे की कुछ प्रजातियों के काटने से दर्द होता है और खुजली होती है।

गिंजाइयों का कारवाँ

बरसात अपने साथ बहुत सारी सौगात लेकर आती है। पहली बरसात के साथ ही मिट्टी की भीनी-भीनी सुगंध वातावरण को खुशगवार बनाती है। यह कई जीव-जंतुओं के लिए वरदान साबित होता है। गर्मी की तपन से बचने के लिए जो जीव ज़मीन के अंदर बिलों और गहरी दरारों में घुसे रहते हैं, वे बरसात की बौछार के साथ ही बाहर निकलने लगते हैं। बरसात के साथ ही ज़मीन पर हरियाली की चादर बिछ जाती है और कई सारे कीट-पतंगे अचानक ही हमारे आसपास दिखाई देने लगते हैं।



इन्हीं कीट-पतंगों में एक है लंबा जीव, गिंजाई। हालाँकि गिंजाई कीट समूह का सदस्य नहीं है। ज़ाहिर है, कीटों में तीन जोड़ी टाँगें होती हैं तथा शरीर तीन भागों मे विभाजित होता है, वहीं गिंजाई की अनेक टाँगें होती हैं।

प्रकृति को जानने में थोड़ी-बहुत दिलचस्पी रखने वाला गिंजाई और इसके व्यवहार को ज़रूर जानता है। वैसे गाँव का हर बच्चा और बड़ा गिंजाई के बारे में बहुत कुछ बता सकता है। खेत-बगीचों और मैदानों में बेबाक, धीमी गति से रेंगते हुए खंडित शरीर वाले जीव को जैसे ही छेड़ा जाए, यह जलेबी की माफिक गोल आकार में दुबक जाता है। कई बच्चे इस

भोले-भाले जीव के साथ खेलते हैं। कुछ बच्चे तो इसे अपनी जेब में डाल लेते हैं। ज़ाहिर है कि यह काटता नहीं हैं। न ही कोई डरावनी शक्ल बनाता है। गिंजाई को छुआ जाए तो इसका शरीर कड़ा-चिकना और सूखा प्रतीत होता है।

बरसात के आगमन के साथ गिंजाई बहुतायत दिखने लगते हैं और बरसात की विदाई के साथ ही ये भी ज़मीन के अंदर घुसने की तैयारी करने लगते हैं। जैसे-जैसे हरियाली की चादर अपना रंग बदलने लगती है, वैसे-वैसे गिंजाई भी अपना ठिकाना बदलने लगते हैं।





गिंजाई के कई नाम हैं। मध्यप्रदेश के मालवा-निमाड़ में इसे तेलन के नाम से जाना जाता है जबकि बुंदेलखंड में इसे गिंजाई के नाम से ही जाना जाता है। अंग्रेजी नाम मिलीपीड इसके नाम को सार्थक करता है, मगर इसकी लाखों टाँगें तो नहीं होतीं। गिंजाई का शरीर गोल-गोल छल्लेनुमा खंडों में विभाजित होता है। अगर खंडित शरीर वाले जंतु को देखना हो तो गिंजाई एक उपयुक्त मिसाल है।

गहरा कत्थई रंग लिए गिंजाई पर जब धूप गिरती है तो यह चमकता है। वैसे कुछ किस्म की गिंजाई का रंग ललाई लिए होता है। गिंजाई की कोई 8000 प्रजातियाँ हैं जो पूरे संसार में पाई जाती हैं। ये छोटे से बड़े आकार में मिलती हैं। गिंजाई की अलग-अलग किस्मों की लंबाई 0.2 सेंटीमीटर से लेकर 28 सेंटीमीटर तक होती है। ज़ाहिर है, इनमें छल्ले जैसे खंडों की संख्या में भी बड़ा फर्क होता है। कम से कम ग्यारह खंडों से लेकर सौ से भी ज़्यादा खंड हो सकते हैं। एक बात तो साफ है कि पूरे

जीव-जगत पर नज़र डालें तो गिंजाई की तस्वीर एक ऐसे जीव के रूप में सामने आती है जिसमें सबसे ज़्यादा टाँगें होती हैं। अगर टाँगों की बात करें तो पहला नाम गिंजाई का ही आता है। गिंजाई के शरीर को ध्यान से देखें तो एक अनूठा पैटर्न देखने को मिलता है। गिंजाई के शुरुआती खंडों में एक जोड़ी टाँग होती हैं मगर बाकी के प्रत्येक खंड में दो जोड़ी टाँगें होती हैं। प्रत्येक खंड में दो जोड़ी टाँगों की कहानी इसके विकास की गाथा बताती है। गिंजाई के जिन खंडों में दो जोड़ी टाँगें होती हैं वे दरअसल, दो खंड थे जो आपस में मिलकर एक खंड बन गए। मगर इन खंडों में दो जोड़ी टाँगें अब भी देखने को मिलती हैं।

गिंजाई को चलते हुए अवलोकन करना अपने आप में एक दिलचस्प घटना हो सकती है। आप कहीं पर गिंजाई को बिना छेड़े चलते हुए देखिए। यह बहुत धीरे-धीरे चलती है, मगर इसकी टाँगें तेज़ी से गति करती दिखती हैं। शायद इसकी टाँगें ही इसकी गति को धीमा बनाती हैं।

गिंजाई ज़्यादातर उन स्थानों पर अपनी रहने की जगह चुनते हैं जहाँ नमी हो और पत्तियाँ वगैरह सड़ रही होती हैं। दरअसल, गिंजाई शाकाहारी प्राणी है, जिसका मुख्य भोजन नरम पत्तियाँ और नीचे गिरकर सड़ रही पत्तियाँ, फल-फूल इत्यादि हैं। गिंजाई सुस्त और सीधा-सादा जंतु है।

गिंजाई के बारे में मुझे कई जानकारियाँ अपने द्वारा किए गए अवलोकन से प्राप्त हुईं। एक तो यह कि कुछ गिंजाइयाँ एक-दूसरे के ऊपर सवारी करते दिख रहे हैं। इतना ही नहीं गिंजाइयों की बारात देखनी हो तो किसी बरसात के मौसम में आप कहीं घास के मैदान में चले जाइए। कितने ही गिंजाई झुंड के झुंड एक लय और ताल के साथ यहाँ-वहाँ विचरते हुए देखे जा सकते हैं। बेशक, झुंड भेड़ और बकरियों के ही नहीं होते, अगर ज़मीन पर नज़र डालें तो गिंजाइयों के भी होते हैं। दिलचस्प बात यह कि गिंजाइयों का कारवाँ एक ही दिशा में आगे बढ़ रहा होता है।

मादा गिंजाई सड़ी-गली पत्तियों में अंडे देती है। अंडों की संख्या सौ तक हो सकती है। कुछ गिंजाई ज़मीन के अंदर सड़ी-गली पत्तियों का घोंसला बनाती हैं और उसमें

अंडे देती हैं। अंडे सड़ी-गली पत्तियों से उत्सर्जित गर्मी पाकर फूटते हैं और बच्चे निकलते हैं। अंडों से बच्चे निकलने में कुछ सप्ताह का समय लगता है।

गिंजाई की कुछ प्रजातियाँ एक ऐसे पदार्थ का स्राव करती हैं जो कुछ कीड़ों को मार सकता है। इस स्राव में नमक का अम्ल, आयोडिन और कुनैन होते हैं। एक जीव शास्त्री ने कुछ जंतुओं को (जिनमें गिंजाई भी थी) एक जार में एकत्रित किया और पाया कि वे सभी जंतु सायनाइड नामक जहर के कारण मृत पाए गए। यह संभावना है कि यह पदार्थ गिंजाई ने ही छोड़ा हो।

कनखजूरा और गिंजाई दो ऐसे अजूबे हैं कि इनके बारे में ख़ासकर बच्चों की पुस्तकों में जिक्र नहीं हुआ है। मगर एक सार्थक कोशिश होशंगाबाद विज्ञान में हुई है। मैंने देखा कि जंतुओं की दुनिया नामक पाठ में परिभ्रमण पर जाकर बच्चे गिंजाइयों का बारीकी से अवलोकन करते। बच्चे गिंजाई की टाँगों और खंडों को गिनते। यह गतिविधि बच्चों को जहाँ अपने आसपास की दुनिया से जोड़ने में मील का पत्थर जैसी कही जा सकती है।

मकड़ी का जाला : वास्तुकला की अद्भुत मिसाल

मकड़ी का जाला अपने आप में एक ख़ूबसूरत चीज़ से कम तो नहीं। अगर मकड़ी के जाले पर नज़र डालें तो यह कई झाड़ियों, पेड़ की डालियों, बिजली के खंभे या खंडहर की दीवारों वगैरह से बारीक धागों की सहायता से लटका मिलता है। जाले को ध्यान से देखें तो पाएँगे कि इसमें ज़रा-सा भी झोल या ढीलापन नहीं होता।

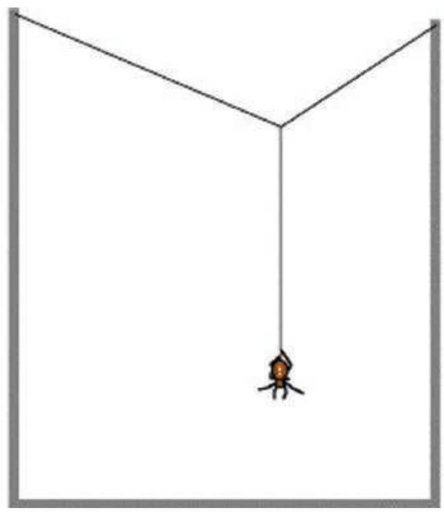
तो सवाल यह है कि आखिर मकड़ी अपना ख़ूबसूरत जाला बुनती कैसे है? ज़ाहिर

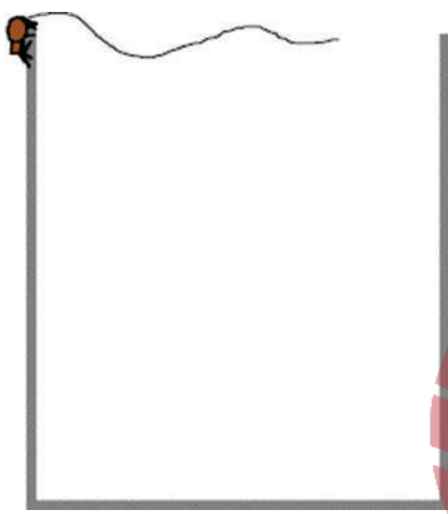


है कि मकड़ी उड़ती तो नहीं कि रेशम के महीन धागे को मुँह या अपनी टाँगों में दबाकर एक से दूसरी जगह पर अटकाती जाए। मगर फिर भी मकड़ी जो जाला बुनती है वह वास्तुकला की एक अद्भुत मिसाल होती है।

दरअसल, मकड़ी के जाला बुनने की कला भी बड़ी ही दिलचस्प होती है। मकड़ी द्वारा जाले को बुनते हुए देखने के लिए काफी धैर्य रखना पड़ता है। दरअसल, नन्ही-सी मकड़ी अपने जाले को दुनिया से बेखबर होकर बुनती है।

मकड़ी अपने शरीर से द्रव छोड़कर उसे हवा में लहराती है। जैसे ही यह द्रव हवा के संपर्क में आता है, सूखकर धागे का रूप ले लेता है। इस दौरान रेशम का धागा किसी





पेड़-पौधे या अन्य आधार से अटक जाता है। अगर धागा नहीं अटकता तो मकड़ी फिर से कोशिश करती है। मकड़ी के लिए यह एक मशक्कत भरा काम होता है। इस पूरी प्रक्रिया में मकड़ी को हवा मदद करती है। हवा में जब धागा लहराता है तो आखिर कहीं न कहीं वह अटक ही जाता है। कई बार तो उसका यह दाँव खाली ही जाता है। आखिर मकड़ी की मेहनत रंग लाती है और धागे को आधार मिल जाता है।

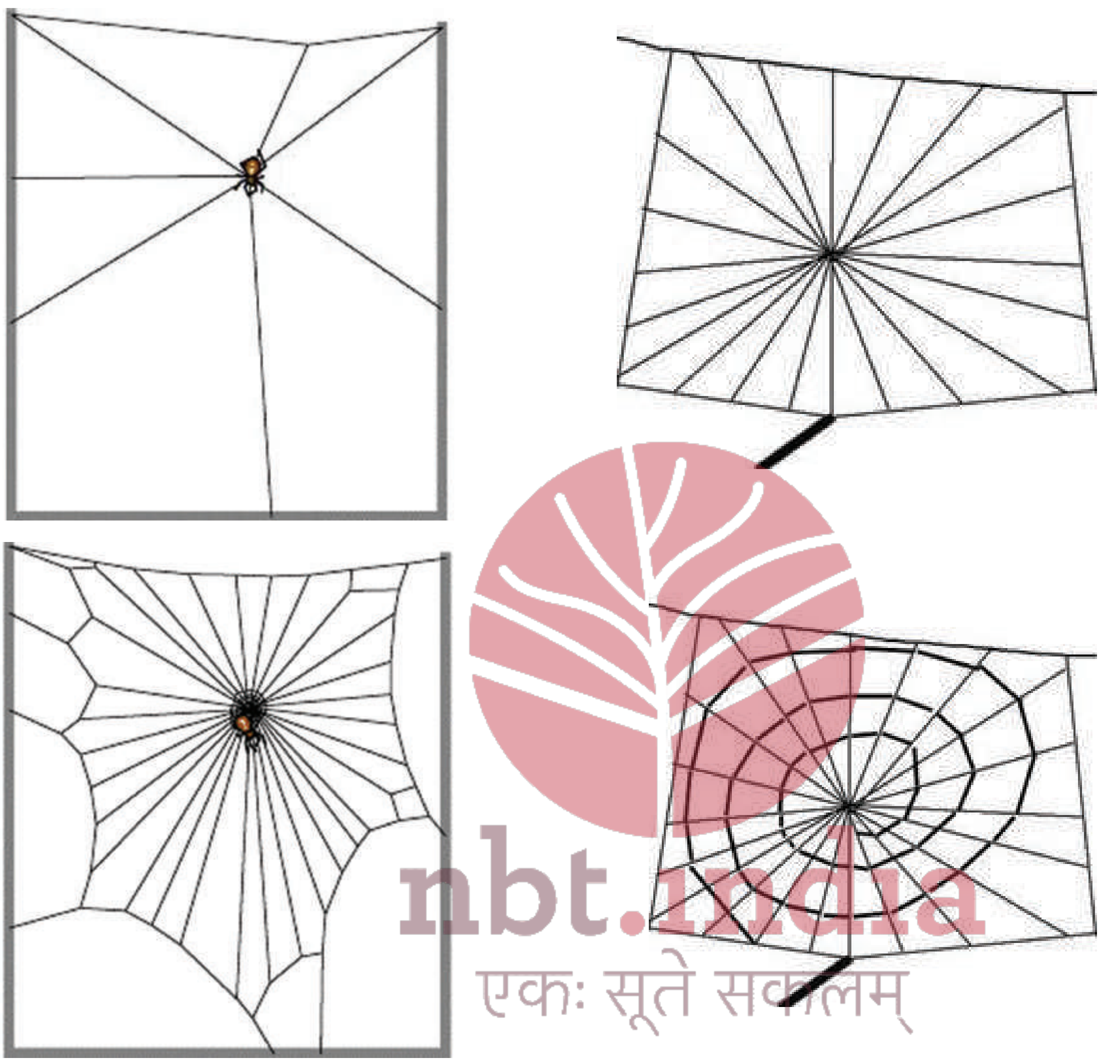
जब धागे का सिरा कहीं अटक जाता है तो मकड़ी उसे खींचकर कस देती है और इसी महीन धागे के सहारे-सहारे चलकर मकड़ी एक दूसरा धागा सटाकर और खींचती है। इस लिहाज़ से वह पक्का करती जाती है कि यह धागा मज़बूत हुआ या नहीं। इसी धागे पर मकड़ी का पूरा का पूरा जाला टिका होता है।

इस धागे को मकड़ी पुल की तरह इस्तेमाल करती है। यह जाले का 'ताना' होता है। ताना-बाना बुनने की मिसाल हमें मकड़ी के जाले में बेहतरी से देखने को मिलती है। दरअसल, ताना पूरे जाल को आधार देगा।

जब ताना बुन लिया जाता है तो मकड़ी इससे झूलता हुआ एक धागा छोड़ती है। इस धागे के साथ मकड़ी भी लटक जाती है और धागा बनने के लिए रेशम द्रव के रूप में छोड़ती जाती है। इस दौरान अगर आप सरसरी तौर पर देखें तो पाएँगे कि मानो

मकड़ी हवा में उड़ रही है। ज़ाहिर है, मकड़ी में उड़ने की क्षमता तो होती नहीं। ध्यान से देखें तो मकड़ी अपने ही द्वारा बुने हुए धागे के सहारे लटकी है। अनुमान लगाया जा सकता है कि मकड़ी के द्वारा बुना हुआ रेशम का धागा कितना मज़बूत होता है।

इस धागे से अंग्रेज़ी के Y (वाय) अक्षर से मिलती-जुलती लाइन खींची जाती है। इस खड़े धागे को वह नीचे कहीं आधार में अटका देती है। इस प्रकार यह 'बाना'



बनाने वाला धागा होता है और एक त्रिकोण बनाता है जो पूरे जाले को मज़बूती प्रदान करता है। इस रचना में अब तक तीन आरियाँ होती हैं। इसके बाद मकड़ी इस त्रिकोण रचना के चारों ओर धागे की एक फ्रेम बनाती है।

जब त्रिकोण बन जाता है तो मकड़ी इसे एक पहिए का आकार देती है। अब अगला कदम होता है उसमें आरियाँ बनाना। वह बहुत-सी आरियाँ बड़ी चतुराई से बुनती है। जब आरियाँ बन जाती हैं तो मकड़ी अंदर की ओर कुंडली के आकार में इन आरियों पर धागे को बुनती जाती है। कुंडली के आकार के ये धागे बिलकुल भी चिपचिपे नहीं होते और धागे काफी दूर-दूर होते हैं। इन धागों की संख्या 50 से ज़्यादा नहीं होती।

अब मकड़ी इस जाले पर चिपकाने वाले कुंडलीकार धागे का जाल बिछाती है। ये धागे पहले जो बिना चिपचिपे कुंडलाकार धागे बिछाए उनकी तुलना में पास-पास होते हैं। एक और मज़ेदार बात यह है कि जब यह चिपकाने वाले धागे बिछा रही होती है उस दौरान पहले बुने कुंडलीकार बिना चिपचिपे धागों को खा जाती है।

अब मकड़ी का जाल बनकर तैयार हो चुका है। मकड़ी इस जाले के केंद्र में जाकर बैठ जाती है। यहाँ मकड़ी रात बिताती है। इस जाले में कई तरह के कीट-पतंगे फँसते हैं। इन कीटों का शिकार मकड़ी करती है।



अब आपको जो बताया जा रहा है हो सकता है कि विश्वास न हो। मगर यह एकदम सच है। जब सुबह होती है तो मकड़ी अपने द्वारा बुने हुए जाले के रेशम को खा जाती है। दरअसल, मकड़ी का जाला रेशम का बना होता है जो एक प्रकार का प्रोटीन है। मकड़ी जाला बुनने में काफी ऊर्जा खर्च करती है। एक तो अपने शरीर से ही रेशम बनाना होता है दूसरा जाला बुनने में खर्च होने वाली शारीरिक ऊर्जा। इसकी पूर्ति करने का यह एक बेहतर तरीका है कि अपने जाले में इस्तेमाल किए गए प्रोटीन को उदरस्थ कर जाना।

मकड़ी पूरी तरह से खानाबदोश है। दिन में मकड़ी जाला बुनती है। रात में जाले का इस्तेमाल शिकार पकड़ने में एक औजार के रूप में करती है। फिर अपने द्वारा सृजित कलाकृति को स्वयं ही हजम कर जाती है और उसका यह क्रम जीवनपर्यंत चलता रहता है।

नन्ही सी मकड़ी का विशाल और मज़बूत जाला

बेशक मकड़ियों के जालों को अपने पूर्वाग्रहों को ताक में रखकर ध्यान से देखें तो यह बेहद कलात्मक होता है। मकड़ियाँ जाला बुनने के लिए रेशम का निर्माण अपने शरीर में ही करती है। इनके उदर भाग में दो रेशम की थैलियाँ हैं जहाँ रेशम का निर्माण होता है।

मकड़ी के उदर के आखिरी में नीचे की तरफ धागा बुनने के लिए एक यंत्र होता है जहाँ ज़रूरत अनुसार मोटा, पतला धागा बुना जा सकता है। इस यंत्र को स्पीनर कहा जाता है। इसमें तीन जोड़ी स्पीनर होते हैं। इनकी स्थिति के अनुसार ये अग्र, मध्य और पश्च स्पीनर कहलाते हैं।

दरअसल, मकड़ी के शरीर में जो रेशम बनता है वह एक किस्म का प्रोटीन है। मकड़ी को कहाँ और कितने रेशम का धागा बुनना है, यह काम बड़ी सूझबूझ और लगन के साथ करती है। जो जानकारी उपलब्ध है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जंतु-जगत में मकड़ी ही एक ऐसा जीव है, जिनमें वयस्क जीव अपने

शरीर में रेशम का निर्माण कर पाते हैं। कुछ कीटों के लार्वा जब प्यूपा में बदलते हैं तो वे अपनी सुरक्षा के लिए रेशम का आवरण ओढ़ लेते हैं। लेकिन इनके वयस्क जीवों में रेशम बनाने की क्षमता नहीं होती।

पक्षी घोंसला बनाते हैं, दीमक बांबी का निर्माण करती है, मधुमक्खी मोम से छत्ता बनाती है। किंतु मकड़ी ही एकमात्र ऐसा जंतु है जो रेशम से ख़ूबसूरत और मज़बूत जाले का निर्माण करती है। मकड़ी जाले का निर्माण अपने रहने के लिए नहीं करती। फिर भी जाला मकड़ी के जीवन का आधार है। जाले के बिना मकड़ी की कल्पना करना भी मुमकिन नहीं। मकड़ी का जाला उसके कान हैं, आँखें हैं, उसकी अपनी दुनिया में क्या कुछ हो रहा है, सब कुछ जाले के जरिए उसको एहसास होता है। मकड़ी अपना आहार अर्थात् शिकार जाले के जरिए ही पकड़ पाती है। बगीचे और घरों में पहिए जैसा गोल जाला बुनने वाली मकड़ी की दृष्टि-क्षमता कमज़ोर होती है किंतु वह जालों के धागों में होने वाले कंपनों को पढ़कर अपने शिकार का पता लगा पाती है।



जगमग दुनिया जुगनू की

हो सकता है कि जुगनू को आपने देखा न हो लेकिन इनको चमकते हुए ज़रूर देखा होगा। अंधेरी रात में आकाश में तारे टिमटिमा रहे होते हैं, वहीं ज़मीन पर जुगनू अपनी रोशनी बिखेर रहे होते हैं। रात अंधेरी हो तो जुगनू का बारी-बारी से चमकना और बंद होना रोमांचक और मनोहारी होता है। यह तो आपने भी देखा होगा कि जुगनू लगातार नहीं चमकते। बल्कि ये त्योहारों पर लगाई जाने वाली सीरिज के बल्वों की तरह जलते औंर बंद होते हैं। यदि ध्यान से देखें तो समझ में आता है कि ये एक निश्चित अंतराल में ही चमकते और बंद होते हैं। सबसे मज़ेदार बात तो यह है कि इनके चमकने और बंद होने के बीच का समय भी तय होता है।

कैसे चमकते हैं जुगनू? इनके शरीर में ऐसा क्या होता है कि रोशनी पैदा होती है? और आखिर रोशनी क्यों पैदा करते हैं? चलिए, इन सब सवालों का ज़वाब पाने की तथा इनके बारे में कुछ ओर मज़ेदार बातें पता करने की कोशिश करते हैं।

पहली बात तो यह कि जुगनुओं के अलावा और भी जीव हैं जो रोशनी पैदा करते हैं। बैक्टीरिया, कुछ मछलियाँ, कुछ किस्म के शैवाल, घोंघे और केंकड़ों में भी रोशनी पैदा करने का गुण होता है। कुछ किस्म की फफूंद भी चमकने की क्षमता रखती है और यह लगातार रोशनी पैदा करती है। ये फफूंद कीटों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। कुकुरमुत्ते की एक किस्म होती है जो रात में बड़ी तेज़ी से चमकती है। जब ये चमकती हैं तो ऐसा लगता है कि मानो छतरियों में लैम्प लगा दिए गए हों। इनका चमकना रात में उपयोग किए जाने वाले नाइट लैम्प जैसा आभास देता है। समुद्र में पाए जाने वाले कुछ जीवों में भी यह गुण होता है। वास्तव में चमकने का यह गुण



स्तनधारियों, पक्षियों और फूलदार पौधों के समूह के सदस्यों में नहीं पाया जाता है। प्रकाश उत्पन्न करने वाले कीटों की कोई एक हजार प्रजातियाँ अभी तक खोजी जा चुकी हैं। वैज्ञानिक अब इस जुगाड़ में लगे हैं कि इस रोशनी पैदा करने के गुण का उपयोग कहाँ किया जा सकता है।

हमारे यहाँ पर पाया जाने वाला जुगनू आधे इंच का होता है। यह पतला और चपटा सा सिलेटी भूरे रंग का होता है। यदि आप उड़ते हुए जुगनू को देख रहे हैं तो याद रखिए कि वह नर जुगनू है। क्योंकि नर जुगनू में ही पंख होते हैं और मादा में पंख न होने के कारण ये उड़ने में असमर्थ होती हैं। मादा जुगनू अपने उड़ते हुए साथी को रोशनी के चमकने और बुझने की लय की मदद से पहचानती है। यानी कि, मादा भी चमकती तो है लेकिन ये किसी स्थान पर बैठी होती है।

जुगनू के शरीर में नीचे की ओर पेट में चमड़ी के ठीक नीचे कुछ हिस्सों में रोशनी पैदा करने वाले अंग होते हैं। इन अंगों में कुछ रसायन होता है। इस रसायन का नाम है ल्यूसिफेरिन। यह रसायन एक अन्य पदार्थ ल्यूसिफेरेज की मौजूदगी में क्रिया करके रोशनी पैदा करता है। इस प्रक्रिया में ऑक्सीजन की ज़रूरत भी होती है। रोशनी तभी पैदा होगी जब इन दोनों पदार्थों और ऑक्सीजन का संपर्क हो।

एक वैज्ञानिक जिनका नाम राबर्ट बायल था। उन्होंने सन 1668 में सबसे पहले कीटों से पैदा होने वाली रोशनी के बारे में बताया था। जुगनुओं की कुछ प्रजातियाँ काफी रोशनी पैदा करती हैं। ऐसी किस्में दक्षिणी अमेरिका और वेस्टइंडीज में पाई जाती हैं। वहाँ के निवासी पुराने जमाने में इन रोशनी पैदा करने वाले कीटों को पकड़कर अपनी झोपड़ियों में उजाले के लिए उपयोग करते थे। ये लोग किसी छेद वाले बर्तन में जुगनुओं को पकड़कर क़ैद कर लिया करते थे। रात में इन कीटों की रोशनी में अपना काम चलाते थे। दूसरे युद्ध में जापानी फौजी किसी संदेश या नक्शे को पढ़ने के लिए कीटों से निकलने वाली रोशनी की मदद लिया करते थे। वे इन कीटों को एकत्र करके रख लेते थे। जब रात को किसी सूचना को पढ़ना होता था तो वे हथेली में उस कीट का चूरा रखकर थूक से गीला करते थे। इस तरह से उन कीटों के चूर्ण में से रोशनी निकलती और अपना संदेश पढ़ लेते थे।

यानी कि रोशनी पैदा करने में तीन पदार्थ होते हैं। इस बात को यों याद रख सकते हैं कि इनमें से ल्यूसिफेरेज उत्प्रेरक का काम करता है। जब ऑक्सीजन और ल्यूसिफेरिन की क्रिया होती है तो रोशनी पैदा होती है।

जुगनू जो रोशनी पैदा करते हैं इसमें गर्मी नहीं होती है। वास्तव में बल्व के जलने पर या आग से रोशनी के साथ ही उसमें से गर्मी भी पैदा होती है। लेकिन जुगनू के शरीर से निकलने वाली रोशनी ठंडी होती है। इसलिए इनके शरीर से निकलने वाली रोशनी को कोल्ड लाटट यानी कि ठंडी रोशनी कहा जाता है।

क्यों पैदा करते हैं जुगनू रोशनी? इस सवाल का ज़वाब पाने के लिए हमको थोड़ी और बातें करनी होगी। हम यदि अपने किसी साथी से कुछ कहना चाहते हैं तो हमारे पास एक भाषा है। जो बोल नहीं पाते हैं वो कुछ इशारों से अपनी बात कहने की कोशिश करते हैं।

वास्तव में जीव अपना वंश चलाने के लिए प्रजनन करते हैं। नर और मादा एक-दूसरे के निकट आने से पहले कुछ संकेत देते हैं। यह संकेत किसी भी रूप में हो सकता है। कुछ जीव एक-दूसरे को नाच के माध्यम से आकर्षित करते हैं। कुछ आवाज़ निकालते हैं।

आपने देखा होगा कि बरसात के दिनों में मेंढक टर्राते हैं। यह टर्राने की आवाज़

नर मेंढक की होती है। दरअसल, नर मेंढक अपने जीवन साथी को बुलाने के लिए टर्राते हैं। कोयल की मधुर आवाज़ से तो हर कोई वाकिफ़ होगा। इसी तरह से मोर की आवाज़ भी सुनी होगी। आमतौर पर, कोयल या मोर ये अपने जीवनसाथी को लुभाने और बुलाने के लिए मधुर आवाज़ निकालते हैं। बया पक्षी अपने जीवनसाथी को लुभाने के लिए ख़ूबसूरत पंखों को धारण कर लेते हैं। झिंगुर अपने साथी को बुलाने के लिए ही तो आवाज़ निकालते हैं। इसी तरह से जुगनू अपने जीवनसाथी को आकर्षित करने के लिए रोशनी पैदा करते हैं।

वास्तव में जुगनू रोशनी के माध्यम से अपने जीवनसाथी को खबर करता है। हर किस्म के जुगनू की किस्म में रोशनी के चमकने और बुझने में एक ख़ास अंतराल होता है। इस अंतराल को जुगनू समझते हैं। ये वैसी ही बात हुई कि इधर से रोशनी का इशारा हुआ और उसी जाति के जुगनू ने उधर से भी इशारा किया। इस प्रकार जुगनू के लिए रोशनी अपने साथी से बतियाने का एक अहम तरीका है।

जुगनुओं में अपने जीवनसाथी को लुभाने और आकर्षित करने के लिए कुदरत ने रोशनी दी है। यह रोशनी हर किस्म में अलग-अलग लय और रंग की होती है। मज़ेदार बात यह कि इस रोशनी को नर और मादा पहचानने की क्षमता रखते हैं। लेकिन इनके चमकने का नुकसान भी इनको कई बार उठाना पड़ता है। होता यह है कि इनको चमकते हुए देखकर इनके दुश्मन इनको शिकार बना डालते हैं। तो अब जब भी आप जुगनुओं को चमकते हुए देखें तो ध्यान से देखना कि इनकी चमकने और बुझने के दरम्यान किस प्रकार की लय होती है।

प्रकृति के छुपे रुस्तम

कीटों की विशाल दुनिया में अनेक कीट तो ऐसे हैं, जो अपनी ही बिरादरी के कीटों का शिकार बनते हैं या दूसरों का शिकार करते हैं। सच तो यह भी है कि इनमें से कइयों के बारे में तो हम ठीक तरह से जानते भी नहीं कि कौन किसका शिकार करते हैं।

अधिकांश कीट साँप, छिपकली, मेंढक पक्षियों और तमाम शिकारियों के हर क्षण पर शिकार होते रहते हैं। कुल मिलाकर प्रकृति में यह मामला एक तरह से खटिया में रस्सी के समान गुँथा होता है। शिकारी के लिए जहाँ शिकार करने में काफी मशक्कत करनी पड़ती है वहीं पर शिकार भी अपने-आपको बचाने की जुगत भिड़ाता है। कुछ आक्रामक और सुरक्षात्मक तरीके अपनाए जाते हैं ताकि बचाव भी हो जाए और सामने वाले को तकलीफ में डाल दें। चलिए देखते हैं कि कीट शिकारियों से अपने बचाव के लिए क्या करते हैं?



ऐसा देखा गया है कि प्रकृति में कीट अपने दुश्मनों बनाम शिकारियों से बचाव के लिए कई तरीके अपनाते हैं।

यों हर कीट के पास अपने बचाव के लिए कोई न कोई तरीका होता ही है। एक जो सबसे आम तरीका होता है कि जहाँ पर भी हो और यदि कोई हमला कर दे तो भाग लो या छिप जाओ। लेकिन दुनिया काफी छोटी है, आखिर भागकर कहाँ जाएगा।

सोचिए कि यदि कोई जीव गुबरिले को खाने की कोशिश करें तो उसको कितनी मशक्कत करनी होगी। बड़े आकार के गुबरीले के शरीर पर जो खोल होता है वो इतना कड़ा होता है कि किसी भी जीव के लिए इसको खाने के लिए खोलना काफी मुश्किल का काम होता है। कोई पक्षी या जीव इसको साबूत निगलने से तो रहा।



कई कीट बेस्वाद होते हैं। उनके शरीर से किसी ऐसे पदार्थों का स्राव होता है कि उनको खा पाना मुश्किल होता है। आपने इस बात पर गौर किया होगा कि कुछ कीट अपने शरीर से एक ऐसा द्रव छोड़ते हैं जो काफी दुर्गंधयुक्त तो होता ही है, साथ ही शरीर पर लग जाए तो घाव हो जाता है।

बरसात के दिनों में ब्लिस्टर बीटल या बिजली के कीड़े काफी दिखाई देने लगते हैं। बिजली के कीड़े का गुण यह होता है कि इसको जब छेड़ा जाए तो अपनी टाँगों के जोड़ों में से एक पीले रंग का द्रव पदार्थ छोड़ता है। यह द्रव पदार्थ चमड़ी पर जलन और फफोले उत्पन्न करता है। इस पदार्थ की काफी तेज़ गंध भी होती है। इस द्रव

पदार्थ को कीट के शरीर से अलग करके इससे कैंथेराइडिन नामक रसायन प्राप्त किया जाता है।

प्रकृति में इस कीट के अनेक दुश्मन हैं जैसे कि कुछ कीटभक्षी पक्षी। जब ये इस कीट को खाने की कोशिश करते हैं तो इस द्रव की दुर्गंध और बेकार स्वाद के कारण पक्षी इससे दूर भाग जाते हैं।

गुबरीले समूह का ही एक और सदस्य है जो खतरा महसूस करते ही तेज़ दुर्गंध वाला द्रव छोड़ता है। लेकिन यह तो और भी चार कदम आगे है। यह अपने पेट से दुर्गंधयुक्त पदार्थ के फव्वारे छोड़ता है। और फव्वारा इतने सधे हुए तरीके से छोड़ता है कि सीधे ही अपने दुश्मन को धराशायी कर देता है। इसीलिए इस गुबरीले या बीटल को **बांबार्डियर बीटल** के नाम से जाना जाता है।



कुछ कीट इतने भद्दे दिखाई देते हैं कि शिकारी उनको देखकर ही मुँह मोड़ लेते हैं। यदि आपने देखा हो तो बरसात के दिनों में घास में या अन्य पौधों पर थूक जैसा कुछ लगा होता है। वास्तव में यह भी एक कीट का ही कारनामा है। कीट थूक-सा कुछ स्राव छोड़ता है। और इस स्राव के भीतर कीट सुरक्षित रहता है।

कई सारे कीटों का रंग-रूप इस कदर का होता है कि वे दुश्मनों के छक्के छुड़ा देते हैं। आपने देखे होंगे कुछ तरह के लार्वा जो कि काफी चटक रंग के होते हैं। और कुछ तो डरावने दिखते हैं। कई कीटों के लार्वा के शरीर पर रोएँ होते हैं। रोएँदार लार्वा को खाने से कई शिकारी कतराते हैं।

एक तितली होती है, जिसके पंखों पर उल्लू की आँखों सी आकृति होती है। दूर से देखने पर लगता है कि कोई उल्लू बैठा है। कुछ ऐसे होते हैं जो वास्तव में "जो भी होते हैं" उससे अलग दिखाई देते हैं। मसलन एक पतिंगे का प्यूपा होता है जो कँटीली झाड़ियों में डालियों से लटका होता है, और सूखे फल का भ्रम पैदा करता है।

कई कीटों में गुण होता है दुश्मन को दिखाई न देना। कीट जिस जगह पर बैठा हो उस परिवेश में इतना घुल-मिल जाए और किसी को पता ही न चले कि यहाँ पर कोई कीट बैठा है। कुछ तो हरे पत्तों की हूबहू नकल होते हैं। शरीर पर पत्तियों में पाई जाने वाली नसों सा जाल भी दिखाई देता है जो कि उसको छिपने में मदद करता है। कई कीट जिनमें बहुत सारे पतिंगे होते हैं जो कि पेड़ के तनों पर बैठे होते हैं और लगता ही नहीं कि यहाँ पर कोई कीट बैठा भी है।

मैं अपने मित्रों के साथ जंगलों में घूम रहा था कि वहाँ पर आसपास से कुछ कीटों की तेज़ आवाज़ आ रही थी। समझ में नहीं आ रहा था कि यह आवाज़ कहाँ से आ रही है। काफी ध्यान से देखा तो पता चला कि बहुतायत कीट तो पेड़ के तनों पर बैठे हैं और अपने पंखों या टाँगों को रगड़कर आवाज़ निकाल रहे हैं।

बहरहाल, जीव-जंतु अपने बचाव के लिए और भी कई तरीके अपनाते हैं। एक बात ज़रूर है कि ''तुम डाल-डाल तो हम पात-पात''। यह कहावत लागू होती है प्रकृति में। प्रकृति ने यदि शिकार को बचने के साधन उपलब्ध कराए हैं तो शिकारी ने भी अपनी उदर-पूर्ति के लिए उनको ढूँढ निकालने के रास्ते खोजे हैं। कई शिकारी जंतु ऐसे भी होते हैं कि उनके शरीर में शिकार के द्वारा छोड़े गए विषैले या जहरीले पदार्थ को हजम करने की क्षमता होती है। तभी तो जीवन का जाल पूरा होगा। वरना प्रकृति का संतुलन कैसे बन पाएगा!

एस एस एंटरप्राइजेज, नई दिल्ली द्वारा शब्द संयोजन तथा पुष्पक प्रेस प्रा. लि., नई दिल्ली द्वारा मुद्रित